युकांद
जुलाई,
१९७२

The International Spiritual Magazine

SANNYAS

A Bimonthly Magazine of the spoken words of wisdom of an Enlightened Master

Inspired By : Bhagwan Shree RAJNEESH
An Enlightened One of modern times.

Annual Subscription Rs. 18/-

[For Subscription, Send yeur M.O.-Cheque To : J. D. Lashkari, Sannyas, C/o. Selprint, A-Z Industrial Estate, Fergusson Rood, Lower Parel, Bombay-13.]

भगवान श्री रजनीश की अमृत-वाणी की एक नवीन हिन्दी मासिक पत्रिका

★ आ नं द ★

संपादक : स्वामी चैतन्य कीर्ति

२६३, माडल ग्राम, लुधियाना (पंजाब)

मूल्य—एक प्रति : 9 रुपया, वार्षिक : 90 रुपये

सदस्यता लेकर लाभ उठावें ।

भगवान रजनीश की सृजनात्मक
युग क्रांति दर्शन की मासिक
संकलन पत्रिका

जुलाई १९७३

प्रबुद्ध

वर्ष – ५ अंक – १ : २

मूल्य एक प्रति : १-०० रु.
„ वार्षिक : १२-०० रु.

युक्रान्द
जुलाई '७३

– मानसेवी सम्पादक मण्डल –
अरविन्द कुमार
सुश्री डा. उर्मिला ★ 'आकुल' राजेन्द्र
आलोक पाण्डे
व्यवस्थापक : स्वामी धर्म सरस्वती

अ नु क्र म णि का

कण-कण अमृत—भगवान श्री के बोध-वचन ३

सच्ची सम्पत्ति—बोध-कथा ४

अपनों से अपनी बात ५

महावीर मेरी दृष्टि में—संक्षिप्त संकलन : 'आकुल' राजेन्द्र ६

अध्यात्म और हम (भगवान श्री की चर्चाओं से)
—संकलन : डा० उर्मिला, पी-एच. डी., जबलपुर ६

अजमेर में आयोजन एक ध्यान शिविर का (एक रिपोर्ताज)
—परमानन्द भारती, अजमेर ३३

अद्वितीय गुरु-समर्पण—मा आनन्द मीरा, बम्बई ३६

अनुभव ही है मार्ग जानने का—संकलन : स्वामी कृष्ण कबीर, बंबई ४१

गीत : काव्य

जो तू ही है—अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र' सिवनी (म. प्र.) ३७

लाओत्से से—मा योग गीता, राजकोट (राजस्थान) ३८

स्वत्वाधिकारी प्रकाशक : अरविन्द कुमार, ७९०, राइट-टाउन, जबलपुर.
मुद्रण : अशेष प्रिंटर्स, ७८१, राइट-टाउन, जबलपुर. ☎ 2957 P.P.

● तप ध्यान के केन्द्र बदलने की प्रक्रिया है, तप की प्रक्रिया ख्याल में आ जाये संकल्प में चली जाये तो जीवन उस यात्रा पर निकल जाता है जिस यात्रा पर निकले बिना अमृत का कोई अनुभव नहीं है। जो मैं हूं उससे अपने को जोड़ना अमृत के द्वार खोलना है।

● एक आदमी है, एक चोर है, एक साधु है, एक बेईमान है, ये है, इनका होना ही पर्याप्त है, इनके प्रति जो आदर है, यह सहज हो जाये तब आप परिवर्तित होते हैं।

★

सच्ची सम्पत्ति ?

बहुत सम्पत्तियां खोजीं किन्तु अन्त में उन्हें विपत्ति पाया। फिर स्वयं में सम्पत्ति के लिए खोज की। जो पाया वही परमात्मा था। तब जाना कि परमात्मा को खो देना ही विपत्ति और उसे पा लेना ही संपत्ति है।

•

किसी व्यक्ति ने एक बादशाह की बहुत तारीफ की। उसकी स्तुति में सुन्दर गीत गाये। वह उससे कुछ पाने का आकांक्षी था। बादशाह उसकी प्रशंसाओं से हंसता रहा और फिर उसने उसे बहुत-सी अशर्फियां भेंट कीं। उस व्यक्ति ने जब अशर्फियों पर निगाह डाली तो उसकी आंखें किसी अलौकिक चमक से भर गईं और उसने आकाश की ओर देखा। उन अशर्फियों पर कुछ लिखा था। उसने अशर्फियां फेंक दीं और वह नाचने लगा। उसका हाल कुछ का कुछ हो गया। उन अशर्फियों को पढ़कर उसमें न मालूम कैसी क्रांति हो गई थी। बहुत वर्षों बाद किसी ने उससे पूछा कि उन अशर्फियों पर क्या लिखा था? वह बोला : उन पर लिखा था—"परमेश्वर काफी है।"

सच ही परमेश्वर काफी है। जो जानते हैं, वे सब इस सत्य की गवाही देते हैं।

•

मैंने क्या देखा ? जिनके पास सब कुछ है, उन्हें दरिद्र देखा और ऐसे संपत्तिशाली भी देखे जिनके पास कि कुछ नहीं है। फिर इस सूत्र के दर्शन हुए कि जिन्हें सब पाना है, उन्हें सब छोड़ देना होगा। जो सब छोड़ने का साहस करते हैं, वे स्वयं प्रभु को पाने के अधिकारी हो जाते हैं।

★

अपनों से अपनी बात

'युक्रांद' ठीक समय पर नहीं पहुंच पा रहा है, यह तथ्य है।

और, यह भी तथ्य है कि लाख चाहने के बाद भी कि 'युक्रांद' समय पर पहुंच पावे, समय पर पहुंचने के कुछ आसार नजर नहीं आते।

फिर भी प्रयत्न तो होगा ही कि समय पर 'युक्रांद' आप तक पहुंचे।
शेष—भगवत् इच्छा!

अतः कहना होता है कि जो होता है, वही हो सकता है, और कुछ नहीं हो सकता।
अपनी ओर से अनेक बार असमर्थताओं के अनुभव के साथ...सभी कुछ ..प्रभु-समर्पण!

—युक्रांद परिवार

महत्वपूर्ण सूचना—'युक्रांद' कार्यालय से अप्रैल, '७३ माह के सदस्यों का रजिस्टर खो गया है, अतः लगभग १०० प्रेमी साधकों तक 'युक्रांद' हम नहीं पहुंचा पा रहे हैं। कृपया जिन मित्रों को 'युक्रांद' नहीं मिल रहा है, उसकी सूचना हमें शीघ्र करें, ताकि प्रेमी-मित्र भगवान श्री की वाणी से वंचित न रह सकें।

● आगामी अंकों में गीता अध्याय ११ के अंश हमारी पूर्व-घोषणा के अनुसार सतत प्रकाशित होंगे। कृपया ध्यान रखेंगे।

—सं०

महावीर

मेरी दृष्टि में : भगवान रजनीश

(भगवान श्री द्वारा १७ सितंबर ६९ से २ अक्टूबर ६९ तक श्रीनगर के पास डल झील स्थित शिविर में दिए गए प्रवचन जो 'महावीर मेरी दृष्टि में' प्रकाशित हो चुके हैं, का संक्षिप्त रूपांतरण।)

★ चतुर्थ पुष्प ★

फिर, महावीर तक पहुंचने का क्या रास्ता है ? शास्त्रीय रास्ता दिखाई पड़ता है; तो साधु-संन्यासी शास्त्र खोले हुए हैं—खोज रहे हैं महावीर को। और क्या रास्ता है ? और क्या मार्ग है ? क्योंकि, अगर शास्त्र खो जायें तो साधु-संन्यासियों और पंडितों के हिसाब से महावीर खो जायेंगे—कोई बचाव नहीं। लेकिन क्या सत्य का अनुभव खो सकता है ? क्या यह संभव नहीं है कि महावीर, कृष्ण जैसी अनुभूति घटे और अस्तित्व के किसी कोने में सुरक्षित न रह जाए ? यदि महावीर और कृष्ण का अस्तित्व किताबों की सुरक्षा पर निर्भर करे तो फिर न तो कृष्ण का कोई मूल्य है, न महावीर का। मगर इतना सस्ता नहीं है यह मामला कि इतनी बड़ी घटनाएँ घटें जिन्दगी में; और खरबों वर्षों में खरबों लोगों के बीच कभी कोई आदमी परम सत्य को उपलब्ध होता हो, इस परम सत्य के उपलब्ध होने की घटना सिर्फ कमजोर आदमियों की कमजोर भाषा में सुरक्षित रहे—और अस्तित्व में इसकी सुरक्षा का कोई उपाय न हो, ऐसा हो भी नहीं सकता।

जगत में महत्वपूर्ण तो क्या, साधारण भी जो घटता है, वह भी नष्ट नहीं होता; इसलिये महत्वपूर्ण घटना मनुष्य द्वारा सुरक्षित किये जाने पर निर्भर नहीं करती। नहीं तो, यह ऐसे ही होगा कि अंधों की समाज में किसी एक आदमी को आंख मिल जाये और उसे प्रकाश दिखाई पड़े और उसके अनुभवों की सुरक्षा अंधों के द्वारा सुरक्षित रखने पर निर्भर करे—वेद-शास्त्र, गीता, बाईबिल आदि के रूप में; और फिर अनुभव के अनुभव की टीकाएं होती चली जायें वो भी अंधों द्वारा ही। और हजार, दो हजार साल बाद आंख वाले आदमी की देखी गयी बात अंधों द्वारा सुरक्षित की गयी हो—व्याख्या, टीका सहित; और फिर उनके द्वारा आंख वाले आदमी की बात को खोजने निकलें, तो हमसे ज्यादा मूढ़ कोई दूसरा नहीं होगा।

अस्तित्व में कुछ भी नहीं खोता—मैं जो बोल रहा हूं, वह और आप जो बोल रहे हैं, वह भी नहीं खोएगा। दो सौ वर्ष पूर्व तो नहीं, किंतु आज लंदन में जो बोला जा रहा है, रेडियो द्वारा श्रीनगर में सुना जा रहा है। सारे जगत में अभी

भी जो बोला जा रहा है, वह भी ध्वनि-तरंगों के रूप में आपके पास से गुजर रहा है, सिर्फ एक यांत्रिक तरकीब की जरूरत है जिससे पकड़ा जा सके—बस। कृष्ण ने अगर कभी भी बोला है तो आज भी उसकी ध्वनि तरंगें, किन्ही तारों के निकट से गुजर रही हैं; और अगर वहां यांत्रिक व्यवस्था हो तो उन्हें वहां पकड़ा जा सकता है। इसका मतलब यह हुआ कि इस अनंत आकाश में, अनंत है इसलिए कुछ नहीं खोता—जो भी पैदा होता है, वह यात्रा करता रहता है।

ये तो ध्वनि की बात हुई, लेकिन और भी सूक्ष्म तरंगें हैं जहाँ अनुभूति की तरंगें शेष रहती हैं। जब हम बोलते हैं तब ध्वनि-तरंगें पैदा होती हैं, लेकिन हम जब अनुभव करते हैं तब भी एक घटना घटती है और तरंगें पैदा होती हैं जो कि और भी सूक्ष्म आकाश में यात्रा करती हैं। रेडियो से स्थूल आकाश में घूमती तरंगों को पकड़ लेते हैं, और अगर यांत्रिक व्यवस्था हो सके तो और सूक्ष्म आकाश में हुए अनुभवों की तरंगों को पुनः पकड़ा जा सकता है। जगत में, जो भी सृष्टि में गहरे अनुभव हुए हैं उतने गहरे आकाश के तल के रिकार्ड सदा सुरक्षित हैं—वे कभी नष्ट नहीं होते और यह आदमी पर नहीं छोड़ा गया है कि वह लिखकर उन्हें सुरक्षित करे। इसका मतलब यह हुआ कि अगर हम इन गहराइयों में अपने भीतर उतरें विशिष्ट ध्यान रखकर भीतर उतरें, तो इन विशिष्ट (महावीर, कृष्ण.. आदि) की अनुभूति से हम तत्काल प्रत्यक्ष संबंध जोड़ सकते हैं। लेकिन किसी विशिष्ट व्यक्ति का ध्यान न रखकर उतरें तो हम अपनी अंतर अनुभूति में उतर जाते हैं, और ऐसी व्यवस्था हो सकती है कि हम महावीर, बुद्ध, कृष्ण...से संयुक्त हो जायें—क्योंकि इनके अनुभव की सूक्ष्म तरंगें अस्तित्व की गहराइयों में आज भी सुरक्षित हैं; हालांकि वह दिया टूट गया है, वह ज्योति खो गई है। और महावीर आदि की अंतरंग सूक्ष्म तरंगे उपलब्ध होने पर, आदमियों की किताबें खो भी जायें, इससे कोई फर्क नहीं पड़ता।

तो मेरी चर्चाओं का ताल-मेल शास्त्रानुसार खोजने की कोशिश न करना, उससे कोई संबंध ही नहीं। किसी और द्वार से मुझे जो दिखाई पड़ेगा, वह मैं आपसे कहना चाहूंगा और मेरे कथन की प्रामणिकता के लिए आपको मेरे साथ प्रयोग के लिए राजी होना पड़ेगा; अन्यथा और कोई उपाय नहीं।

(क्रमश)

आध्यात्म और हम

(भगवान श्री की चर्चाओं से)

●

साक्षी भाव द्वारा विचार-निर्जरा और आत्मानुभव

इसमें कोई सन्देह नहीं कि विचारों का क्रम सदा चलता रहता है लेकिन विचार अपने में तब तक शक्तिहीन हैं, जब तक कि मेरा उन्हें सहयोग न मिले, जब तक कि मैं उनको शक्ति न दूँ। इसलिए अभ्यास केवल इतना ही करना है कि विचार को मैं अपनी तरफ से शक्ति न दूँ, वे आयें तो आने दें; जायें तो जाने दें। आप विचार के साथ किसी तरह का तादात्म्य, किसी तरह की मैत्री कायम न करें। इतना ही होश रखें कि मैं केवल देखने वाला भर हूं। ये आयें और जायें। आप धीरे-धीरे पायेंगे कि जो विचार आयेगा, उसे आपने कोई भी सहयोग नहीं दिया, वह बिल्कुल निष्प्राण होकर मर जायेगा। और इस तरह सतत प्रयोग करने पर अचानक आप पायेंगे कि उसका आना भी बन्द हो गया है। इसी साक्षी के माध्यम से हमारे भीतर जो विचार संगृहीत हैं, उनकी भी निर्जरा हो जायेगी। वे आयेंगे, उठेंगे, पूरे रूप से खड़े होंगे लेकिन हम अगर चुप रहें और कोई सहयोग न दें तो सिवाय इसके कि वे विसर्जित हो जायें, उनका और कोई रास्ता नहीं है। कितनी ही चिन्ता पकड़ती हुई मालूम हो, चुपचाप देखते रहें। यह भाव मत करिये कि मैं चिन्तित हो रहा हूं। क्योंकि तब सहयोग शुरू हो जायेगा। केवल इतना ही भाव करिये कि मैं देख रहा हूं कि चिन्ता है। मैं चिन्तित हूं यह तो ख्याल ही मत करिये। यह विचार तो, फिर सहयोग हो गया। असहयोग का अर्थ है कि मैं—

> एक भेद मानकर चल रहा हूं चिन्ता मे और अपने में, विचार में और अपने में जो हो रहा है उसमें और मैं जो देख रहा हूं उसमें एक भेद मान रहा हूं। इसी भेद को साधते चले जाना है कि जो भी मेरे भीतर हो रहा है उससे मैं भिन्न हूं।

जो भी मुझसे बाहर हो रहा है उससे मैं भिन्न हूं। इस बोध को साधते चले जाना है। एक सीमा आयेगी कि जो जो, जिस जिस से मैं भिन्न हूं वह वह विलीन हो जायेगा और अन्ततः केवल वही शेष रह जायेगा जिससे

मैं अभिन्न हूं। भिन्न के विलीन हो जाने से जो अभिन्न है वह शेष रह जायेगा।—

उसी शेष सत्ता का जो अनुभव है वही स्व-अनुभव है।

तो उससे किसी तरह का तादात्म्य न करें, किसी तरह का सम्बन्ध न जोड़ें।

वस्तुतः दो ही स्थितियां हैं—पहली तो यह है कि हम देख रहे हैं और कुछ दीख रहा है और दूसरी है कि हम देख रहे हैं और कुछ नहीं दीख रहा है। अभी हम जब भी देखेंगे भीतर तो कुछ दिखायी पड़ेगा। कुछ दिखायी पड़ेगा – वही विचार है। किन्तु एक सीमा आयेगी देखते-देखते कि हम देखते रहेंगे और कुछ दिखायी नहीं पड़ेगा।—

जब कुछ नहीं दिखायी पड़ेगा तब जो अनुभूति होगी, वह विचार की न होकर चैतन्य की होगी क्योंकि अब तो वहां कुछ भी दिखायी नहीं पड़ रहा। जब कुछ दिखायी नहीं पड़ रहा—तो देखने की जो क्षमता है, वह जो ज्ञान की शक्ति है, वह जो अभी तक किसी किसी को देखती रही थी, अब चूंकि वहां कोई भी नहीं है कि जिसको देखें, इसलिए

सिवाय अपने को देखने के इसके पास और कोई मार्ग नहीं रह जायेगा।

हमारे पास जो ज्ञान है उस ज्ञान से उसके आब्जेक्ट छीन लेने हैं, ताकि उसके पास देखने को कुछ न रह जाये। जब उसके पास देखने को कुछ न रह जायेगा तब भी देखने की क्षमता तो रहेगी। और जब कुछ देखने को नहीं रहेगा तो वह देखने की क्षमता किसे देखेगी? उस अंतिम क्षण में, जब चैतन्य देखने को कुछ नहीं पाता है तो अपने को देखता है। इसी अपने को देखने को आत्मज्ञान कहते हैं।

अतः एक ही साधना है कि हम किसी तरह से अपनी चेतना के जो लक्ष्य, जो कण्टेंट हैं, कांशसनेस से उनको छीनते चले जायें, उनको विरल करते चले जायें। उन्हें विलीन करते चले जायं। एक सीमा आयेगी कि कण्टेंट कुछ नहीं होगा, केवल कांशसनेस होगी। जब तक कण्टेंट कुछ है तब तक कांशसनेस दूसरे की है। मगर जब कण्टेंट कुछ नहीं होगा तब कांशसनेस—सेल्फ कांशसनेस हो जायेगी। जब तक हम किसी को देख रहे हैं तब तक अपने को नहीं देख रहे हैं। जब हमें कुछ भी देखने को शेष नहीं रह जायेगा तब जिसको हम देखेंगे वह हम स्वयं हैं।—

> इतनी साधना है कि हम चेतना के सामने से उसके सारे विषय, जिन-जिन पर चेतना रुकती और ठहर जाती है और जिनकी वजह से अपने पर नहीं लौट पाती है, इनको धीरे-धीरे क्षीण कर दें।

क्षीण करने का रास्ता है कि हम असहयोग करें। अभी हम उनके बनाने वाले हैं, यानी हमीं उनको बनाये हुए हैं। जब खाली बैठते हैं तो कुछ न कुछ विचार चल रहे हैं। जो विचार चल रहे हैं वे अचानक थोड़े ही चल रहे हैं, हम ही उनको चला रहे हैं। क्योंकि हमारे बिना सहयोग के वे चल नहीं सकते हैं। जो-जो विचार चल रहे हैं, उनसे सहयोग को खींच लें और कुछ न करें, बस इसी को सामायिक, इसी को ध्यान समझें। अगर सारे विचार विलीन हो जायें तो आपमें कोई इगो, और कोई व्यक्ति नहीं मालूम होगा। आपको मालूम होगा केवल होना। केवल बीइंग मालूम होगा, जिसमें यह भेद मालूम नहीं होगा कि मैं व्यक्ति हूं या समष्टि हूं। केवल होना मात्र रह जायेगा। प्योर एक्जीस्टेंस मात्र होगा। वास्तव में—

> उस प्योर एक्जीस्टेंस में जो विचार हमारे इकट्ठे हैं उन विचारों के कारण हम एक व्यक्ति मालूम होते हैं।

यह जो हमें लगता है कि मैं अ हूं, आप ब हैं, आप स हैं। यह जो 'अ' 'ब' 'स' हमने चिपकाया हुआ है, यह हमारी विचार-शक्ति है। प्रायः हम कहते हैं कि "मैं मुक्त हो जाऊंगा", यह बात बहुत ठीक नहीं है। "मैं मुक्त हो जाऊँगा", इससे तो यह धारणा है कि मुक्त होकर भी 'मैं' रहूंगा यानी 'मैं' की तरह। यह बात नहीं है। "मैं", की मुक्ति "मैं", से भी मुक्ति है। जो शेष रह जायेगा उसमें इस "मैं", जैसी चीज को खोज पाना सम्भव नहीं है। क्योंकि यह "मैं", जो था यह जो अहंकार था, यह जो बोध था व्यक्ति होने का वह उन्हीं विचारों के इकट्ठे गूंज होने की वजह से था। उन्हीं विचारों का इकट्ठे रूप का नाम मैं था। जब विचार खिसक जायेंगे तो मैं भी खिसक जायेगा।

एक बौद्ध भिक्षु हुआ है नागसेन। वह बड़ा अद्भुत भिक्षु हुआ और बड़ी मीठी कथा है। मीनांगन नाम के यूनानी सेनापति ने, जिसको सिकंदर भारत छोड़ गया था, नागसेन को आमंत्रण दिया राज-दरबार में; चर्चा करने को। वह बड़ा उत्सुक था धार्मिक चर्चा में। स्वागत के लिए

लोग पहुंचे गांव के बाहर और नागसेन भिक्षु को रथ पर लेकर आये। पांच सौ भिक्षु और साथ थे। महल के बाहर आकर नीनांगन ने नमस्कार किया नागसेन को। नागसेन रथ से उतरा। नीनांगन ने कहा, "नागसेन भिक्षु का हम स्वागत करते हैं।" उस नागसेन ने कहा, "हम स्वागत को स्वीकार करते हैं, यद्यपि भिक्षु नागसेन जैसा कोई है नहीं।" नीनांगन बोला—यह क्या कहते हैं? फिर स्वीकार कौन करता है? नागसेन ने कहा—कामचलाऊ है ताकि आपको बुरा न लगे, लेकिन सच ही भिक्षु नागसेन जैसा कोई नहीं है। नीनांगन ने कहा—फिर यह कौन आया? आप आये, आप मेरे सामने खड़े हैं, आप कौन हैं? तो उसने एक बहुत अद्भुत बात कही। उसने कहा—यह जो रथ है, यह रथ है न? नीनांगन ने कहा— निश्चित ही रथ है। तो उसने कहा—इसके पहियों को निकाल कर अगर तुमसे पूछें कि यह रथ है, तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे, यह रथ नहीं है ये पहिये हैं। हम एक-एक हिस्सा इसका निकाल कर तुमसे पूछें कि यह क्या है, तो तुम क्या कहोगे? तुम कहोगे कि ये पहिये हैं, यह आगे का डण्डा है, यह पीछे का डण्डा है, फलां है, ढिकां है। सारे रथ के अंग हम निकाल लेंगे, तो किसी को भी रथ नहीं कहते, तो फिर रथ कहां है? रथ केवल जोड़ है। अगर सारे अंग खींच लिए जायं तो जोड़ नहीं बच रहेगा। रथ केवल जोड़ है। नागसेन ने कहा कि जैसे रथ जोड़ है वैसे ही यह नागसेन नाम का जो व्यक्ति है, यह केवल जोड़ है। इसके हट जाने पर नागसेन नहीं रह जायेगा। जो रह जायेगा उसको नागसेन कहना कठिन है।

जैनों ने इसको अहंकार विसर्जन कहा। अहंकार विसर्जन और आत्म-उपलब्धि कहा। वह आत्मा जो है वह व्यक्ति नहीं है, अहंकार नहीं है। बौद्धों ने इसे अनात्म भी कह दिया। उन्होंने कहा, वह आत्मा ही नहीं है। कुछ फर्क नहीं है दोनों में। जो शेष रह जाता है उसको मैं की सत्ता का संस्कार देना नासमझी है।

जैसे-जैसे मैं अपने भीतर चलता हूं वैसे-वैसे 'मैं' विलीन होता चला जाता है। यह समझने जैसी बात है। जैसे-जैसे मैं बाहर चलता हूं, 'मैं' सघन होता चला जाता है। वह जो 'मैं' है, एक्सटेंशन होता चला जाता है। जैसे-जैसे भीतर चलियेगा, 'मैं' जो है विरल होता चलेगा। जो आदमी अपने से जितना बाहर चला गया है उतना उसका मैं मजबूत पाइयेगा और जो आदमी अपने जितने

भीतर चला गया है उतना ही उसमें 'मैं' नहीं पाइयेगा। और हम जो बाहर चलते हैं, अगर बहुत गौर से देखें तो उसको 'मैं' को ही मजबूत होने का सुख है, और कोई सुख नहीं है। वे जो बड़ा भवन खड़ा कर लेते हैं उसमें सुख लेते हैं, वे जो बड़ा राज्य जीत लेते हैं, उसमें सुख लेते हैं, वे जो बड़ा धन इकट्ठा कर लेते हैं, वे जो बड़े पण्डित या बड़े साधु बन जाते हैं उसमें भी सुख लेते हैं। वह सब 'मैं' का सुख है। जितना हम इस तरह की चीजें इकट्ठे करते हैं उतना 'मैं' जो है, भर जाता है। और वजनी हो जाता है। कुछ मालूम होने लगता है। क्योंकि फिर हम कह पाते हैं कि 'मैं'! मैं कोई साधारण आदमी नहीं हूं। 'मैं' उतना ही ज्यादा ठोस और वजनी हो जाता है। दुनिया में दो ही दौड़ें हैं और दो ही तरह के आदमी हैं—एक दौड़ है कि 'मैं' को मजबूत करो, और एक दौड़ है कि 'मैं' को विसर्जित करो। एक तरह का आदमी है जो उस दिशा में चल रहा है जहां और घना 'मैं' होता चला जायेगा। जितना घना मैं होगा, आत्मा से उतनी ही दूरी हो जायेगी। जितना प्रगाढ़ 'मैं' का बोध होगा उतने ही हम आत्मा से फासले पर चले जायेंगे। यानी अगर ठीक से समझें तो मैं की प्रगाढ़ता आत्मा से दूरी नापने का यन्त्र है। और जितना मैं विरल होता चला जायेगा उतना ही वह अपने करीब आने लगेगा। और जिस क्षण हम बिल्कुल अपने में आयेंगे, हम पायेंगे 'मैं' नहीं है।

यानी वास्तविक 'मैं' को पाते ही, जिसको हम 'मैं' करके जानते रहे हैं वह नहीं रह जायेगा।

●

आध्यात्मिकता और भौतिकवाद

आज दुनियां के अधिकांश लोग यही कहते हैं कि मनुष्य के भीतर सिवाय पदार्थ के और पदार्थ से उत्पन्न शक्ति के और कोई आत्मा नहीं है। मनुष्य केवल पदार्थ का और रसायन का मिला जुला रूप है। अगर ये सारी चीजें अलग हो जायें तो आत्मा जैसा वहां कुछ भी नहीं है। यह विचार काफी जोर पकड़ा है और एकदम से टाल देने जैसा नहीं है। दिक्कत सिर्फ यही है कि जो लोग इस विचार को दे रहे हैं उनमें से एक ने भी आत्मा को जानने के जो उपाय हैं उन पर प्रयोग नहीं किया। उसके जो एक्सपेरीमेंट हैं, उनमें से वे नहीं गुजरे हैं। यह बिना प्रयोग के, बिना

किसी वैज्ञानिक साधना के कही हुई केवल विचारगत बात है। विचार से ऐसा तय करते हैं कि यही बात है। जो यह कहते हैं कि आत्मा को किसी ने देखा नहीं, यह गलत है। क्योंकि ऐसा नहीं है कि आत्मा को किसी ने नहीं देखा। जिन्होंने देखा है, उन्हीं लोगों ने इसकी खबर दी है। वह कोई विचार नहीं है न कुछ लोगों ने ही यह सोचकर तय किया कि आत्मा होनी चाहिए। आप भी अपने भीतर उस सत्ता को अनुभव कर सकते हैं। अनुभव करने की पद्धति और प्रयोग हैं और जब पूरी-पूरी चेतना को अनुभव करेंगे तो आप स्पष्ट यह बात जानेंगे कि यह पूरा का पूरा शरीर अलग है और मेरी जो चैतन्य का बिन्दु है वह अलग है। उसमें रंच मात्र भी संबंध कहीं ढूढ़े नहीं मिलेगा। अगर और थोड़े गहरे जाइयेगा तो बिल्कुल इसे शरीर से पृथक करके, अलग खड़े होकर शरीर को पड़े हुए भी देखा जा सकता है। उतना भी साहस करिये तो शरीर के बाहर भी चैतन्य के बिन्दु को अलग निकाल ले सकते हैं। साथ ही यह जो हमको लगता है कि ऐसा जो आत्मा का बिन्दु है, यह जो चैतन्य का बिन्दु है यह देहभान होने से मिल जायेगा तो कृष्णमूर्ति को आप गलत समझे हैं, यह परिपूर्ण भान होने से मिलेगा। देहभान होने से तो यह खोया हुआ है। जितना अधिक हमें देहभान होगा उतना अधिक हमको इसका पता नहीं लगेगा। देह भान होने से केवल शरीर का पता लगता है। क्योंकि यह इतना स्थूल है शरीर कि इसके जानने के लिये बहुत भान की जरूरत नहीं है। जितनी स्थूल चीज होती उतनी बिना भान के भी पता चल जायगी। यहां से एक शराबी निकले नशे में तो जो पत्थर पड़े हैं, उनसे वह टकरायेगा तो उसे पता चल जायेगा कि यहाँ पत्थर पड़ा है, यहां रास्ता नहीं है। लेकिन जितनी सूक्ष्मतर चीजें इस कमरे में होंगी तो उसको पता पड़ना कठिन हो जायेगा। तो जितना हमें देह भान होगा, उतनी ही स्थूल और मूर्त चीजों का पता चलेगा। अभी हम अपने में खोजते हैं तो पता चलता है कि शरीर है। यह हमारी एक बेहोशी की और देह भान की स्थिति है जितना हमारा भान बढ़ेगा, जितना कांशसनेस, अवेयरनेस बढ़ेगी उतनी हमको इससे ज्यादा सूक्ष्मतर चीजों का अपने भीतर होने का बोध होने लगेगा। तो जिस दिन हम परिपूर्ण भान में होंगे उस दिन हमें उसका पता चलेगा जो मात्र कांशसनेस है। परिपूर्ण भान में आने से उसका पता चलेगा जो केवल बोध मात्र है। उस परिपूर्ण बोध में जाने की जो प्रक्रिया

है वह मन को विसर्जित कर देती है। मन का विसर्जन आत्मा का विसर्जन नहीं है। मन के विसर्जन से ही आत्मा का बोध शुरू होता है। मन से मेरा अर्थ है विचार, उनका इकट्ठा जोड़, वह जो थाट-प्रोसेस है। अभी तो हम, या मार्क्स या कोई भी लोग जो इस तरह चिन्तन करते हैं उनको दो ही बातें दिखायी पड़ती हैं—शरीर दिखायी पड़ता है और विचार दिखायी पड़ते हैं। आप भी अपने भीतर जाइयेगा तो दो ही बातें मिलेंगी—एक तो यह शरीर है यानी यह रसायनिक प्रोसेसज हैं, शरीर में हो रही हैं, वह। और थोड़ा भीतर हटियेगा तो थाट-प्रोसेस मिलेगी, विचार मिलेगा। पर दो ही चीजें मिलेंगी।

यह जो मन को मारने की बात है यह इसीलिए है कि जब मन का विचार बन्द हो जायेगा तब आप अपने भीतर एक और तीसरी चीज पायेंगे जो इसके पहले आपने पायी ही न थी। तब आपको कांशसनेस मिलेगी। वह कांशसनेस जो कि पाती है कि मेरे में शरीर है और मेरे में विचार है। आखिर कौन है जिसको यह पता चलता है कि मेरी देह है? किसी को पता चल रहा है कि यह मेरी देह है। किसी को पता चल रहा है कि ये मेरे विचार हैं। जिसको यह पता चल रहा है कि मेरी देह, मेरे विचार हैं—निश्चित ही देह और विचार के पीछे कोई और भी है जो इन दोनों को देखता और जानता है। वह जो बिन्दु है इन दोनों के पीछे वह दोनों को जानता और पहचानता है। जब ये दोनों बिल्कुल परिपूर्ण शान्त होंगे या न होने के बराबर हो जायेंगे तब उसका बोध होगा। इसलिए पुराना जो समस्त योग है, उसमें दो ही साधनाएं हैं, एक आसन की साधना है और एक ध्यान की साधना है। आसन के माध्यम से शरीर की समस्त क्रियाओं को थिर किया जाता है और ध्यान के माध्यम से विचार की क्रियाओं को थिर किया जाता है। आसन के माध्यम से शरीर को जड़वत कर देते हैं और ध्यान के माध्यम से विचार को जड़वत कर देते हैं। जब शरीर भी जड़वत हो जाता है और विचार भी जड़वत हो जाता है तब भी पता चलता है कि मैं हूं। जब शरीर की समस्त क्रियाएं शून्यप्रायः हो गयी हों, चित्त भी शून्य प्रायः हो गया, तब भी पता चलता है कि मैं हूं। और तब इतना स्पष्ट पता चलता है कि देह यह पड़ी हुई है, मरे हुए विचार यह पड़े हैं। मैं अलग खड़ा हूं। वह जो अलग होने का आत्यंतिक बोध है, जो अनुभूति है वह अनुभूति जिन्हें

हुई है, उन्हीं लोगों ने कही है। जो लोग उसका विरोध कर रहे हैं उनकी बात का मूल्य इसलिए नहीं है कि उनमें से कोई भी इस बात का प्रयोग नहीं कर रहे हैं। मार्क्स की बात का बहुत मूल्य नहीं है इस सम्बन्ध में। इसलिए नहीं कि उसने कोई गलत बात कही, इसलिये कि वही उस स्थल पर साइंटिफिक नहीं है, जिसका दावा है उसके दिमाग में। उसके दिमाग में दावा है कि मैं हर चीज में साइंटिफिक हूं। साइंटिफिक होने का दावा एक ही अर्थ रखता है कि मैं जो भी कह रहा हूं, स्वीकार कर रहा हूं या अस्वीकार कर रहा हूं, उसको मैंने प्रयोग करके जाना है। वह वैज्ञानिक इतना ही कह सकता है कि हम अभी जो प्रयोग करते हैं, उससे हमें आत्मा नहीं मिलती है। वह यह नहीं कह सकता है कि हमारे प्रयोगों से पता चलता है कि आत्मा नहीं है। यह अवैज्ञानिक हो जायेगी बात। वैज्ञानिक इतना कह सकता है कि हम जो प्रयोग करते हैं उससे हमें आत्मा नहीं मिलती। यह तो साइंटिफिक एसर्शन होगा। अगर वह यह कहे कि हमने प्रयोग करके देख लिया कि आत्मा नहीं है तो यह बात अवैज्ञानिक हो जायेगी। क्योंकि प्रयोग के बाहर की बात करने लगा वह। महावीर या बुद्ध या उस तरह के जो लोग कहते हैं कि आत्मा है वह इसलिए नहीं कहते कि आत्मा कोई सिद्धांत है, बल्कि इस प्रयोग से वे जानते हैं कि है और ऐसे प्रयोग से उसको जानते हैं, बड़े आश्चर्य की बात है कि जिन जिन को उसका अनुभव हुआ वह यहाँ तक कहने को राजी हैं कि एक दफा यह हो सकता है कि संसार न हो, लेकिन वह है। वह इस दूर तक कि जगत को माया तक कहने के लिये राजी हो सकते हैं लेकिन उसको इन्कार करने को राजी नहीं होते। जो लोग उसको अनुभव करते हैं, उसको ही स्वीकार कर पाते हैं। जिसको हम स्वीकार कर पाते हैं, उसके बारे में वे कहते हैं कि वह न भी हो तो भी चलेगा। वह नहीं के ही बराबर है। करीब-करीब बात ऐसी है कि जैसे स्वप्न में हम सोये हों और स्वप्न को देखते हों। हमारे लिए स्वप्न सब कुछ है जब तक हम स्वप्न को देख रहे हैं। जागकर हम कहेंगे कि जो जागकर देख रहे हैं, वह सब कुछ है, वह स्वप्न कुछ भी नहीं है। लेकिन सपने के भीतर निश्चित ही स्वप्न सब कुछ है। तो गवाही उनकी अर्थपूर्ण नहीं है जिन्होंने स्वप्न को ही देखा है। गवाही उनकी अर्थपूर्ण है जिन्होंने जागकर भी देखा है। जिन्होंने स्वप्न ही देखा और जागकर भी देखा, जो दोनों स्थितियों से गुजरे,

उनकी गवाही, उनकी साक्षी, महत्व-पूर्ण है। किन्तु जो स्वप्न में ही जागृति के बारे में कोई निर्णय लेते हैं उनकी बात का कोई मूल्य नहीं है। मेरी समझ में एक ही कठिनाई है अब तक कि किसी भी मैटीरियलिस्ट या उस भांति के भौतिकवादी विचारक ने यह साहस क्यों नहीं किया ? वह थोड़ा योग के माध्यम से जानने की तो कोशिश करें जिसको वैज्ञानिकता का इतना दावा है वह इतना भी तो करे कि इसका परीक्षण कर ले। और आप हैरान होंगे, यह जानकर कि आज तक किसी परीक्षण किये व्यक्ति ने इन्कार नहीं किया है। निरपवाद रूप से। वह ठीक अर्थों में भौतिकवादी भी नहीं है। क्योंकि परीक्षण और प्रयोग ही तय करेगा कि क्या है और क्या नहीं है। मार्क्स के बाद अभी पिछले सौ वर्षों में बहुत फर्क हुआ है और वैज्ञानिक उस अर्थ में जड़वादी नहीं रह गया जैसा कि था। क्योंकि कुछ अद्‌भुत घटनाएं घटी हैं। पहली घटना तो यह घटी कि जिसको मार्क्स के समय में मैटर कहा जाता था वह विलीन हो गयी बात। अब मैटर जैसी कोई चीज है नहीं। पहले उसने इन्कार कर दिया था कि आत्मा जैसी कोई चीज नहीं है। इसके बाद पदार्थ ही सब कुछ है यह माना। फिर पदार्थ की जो खोज चली उससे धीरे-धीरे पता चला कि पदार्थ तो है ही नहीं। वह पदार्थ के अंतिम तल में जाकर जहां इलेक्ट्रान और न्यूट्रान रह जाते हैं वहां कोई पदार्थ नहीं है। वहां केवल विद्युत कण हैं। और वे विद्युत कण मैटीरियल नहीं हैं। यानी उनका कोई वजन नहीं है और उनको तौला नहीं जा सकता, नापा नहीं जा सकता। कोई रिस्ता नहीं है। विज्ञान एक अजीब मुसीबत में पड़ गया, आत्मा को पहले इन्कार कर चुका था, मैटर को अब उसने इन्कार कर दिया। अब उनके पास कहने को कुछ भी नहीं कि क्या है। इस वक्त का जो नवीनतम वैज्ञानिक है उसके सामने सवाल यह है कि वह कुछ भी नहीं कह सकता है कि क्या है। तो मैंने तो एक और बात कहनी शुरू की मैंने तो यह कहना शुरू किया कि विज्ञान सत्य के संबँध में कुछ भी नहीं कह सकता, विज्ञान केवल यूटीलिटी के संबंध में कुछ कह सकता है। सत्य और यूटिलिटी में फर्क है। विज्ञान कह सकता है विद्युत से पंखा कैसे चलेगा। वह यह नहीं कह सकता कि विद्युत क्या है, और अभी भी नहीं कहता। अभी भी विज्ञान यह नहीं कहता कि विद्युत क्या है। अभी भी वह यह कहता है कि पंखा यों चल सकता है और मशीनें यों चल

सकती हैं। विद्युत की उपयोगिता तो विज्ञान देता है, विद्युत क्या है यह नहीं कहता। तो मेरे सामने अब यों नजर है कि साइंस जो है वह यूटीलिटी की खोज है। रिलीजन जो है वह ट्रुथ की खोज है।

शब्दों द्वारा किसी दूसरे को आत्मानुभव समझाना बहुत कठिन है। असल में भाषा से आप कोई भी चीज क्या समझाते हैं? मैं कहूंगा, "यह एक दरवाजा है।" आप समझ लेते हैं। क्यों? इसलिए कि मैंने भाषा से आपको समझा दिया? नहीं भाषा के अलावा आप इसको जानते हैं। जब मैं कहता हूं कि यह दरवाजा है तब आप इसको पहले से जानते हैं कि यह दरवाजा है और इसलिए मेरा यह कहना कि—दरवाजा है, आपको कुछ समझा पाता है। जब मैं एक शब्द बोलता हूं तो आप में कोई अर्थ पैदा नहीं कर सकता क्योंकि शब्द की प्रतिध्वनि दे सकता हूं, अर्थ आप में होना चाहिए। जैसे कि जब मैं कहता हूं, "यह मकान है" तो मकान आपको एक अर्थ देता है। जब मैं कहता हूं, "आत्मा है", तो आत्मा शब्द खाली रह जाता है, वह कोई अर्थ नहीं देता। मकान को आप जानते हैं इसलिए मकान अर्थ देता है।

आत्मा को आप नहीं जानते इसलिए वह अर्थ नहीं देता। बोलने वाले की तरफ से केवल शब्द आते हैं। सार्थकता सुननेवाला जानता है। तो आपकी जितनी अनुभूति होगी उतने ही तल तक भाषा सार्थक होती है। आपकी जिस तल के आगे अनुभूति नहीं है उस तल पर भाषा आपके लिए केवल शब्द रह जायेगी। लेकिन उस तल पर भी एक तरह की सार्थकता उसमें है और सार्थकता इसमें है कि उस तल पर जहां शब्द आपको समझ में नहीं पड़ते क्योंकि आपकी अनुभूति नहीं है, वहां पर शब्द अर्थ नहीं देते लेकिन प्यास देनी शुरू कर देते हैं। यानी, जैसे कि मैंने कहा, आत्मा है, आप नहीं समझ रहे हैं कि वह क्या है। लेकिन यह भी अगर आपको समझ में आ रहा है कि मेरी समझ में नहीं आता है कि आत्मा क्या है तो आपकी प्यास शुरू हो गयी। यानी मैं आपको आत्मा तो नहीं बता पाया लेकिन आत्मा कैसे आप जानेंगे उस तरफ का शायद पहला संक्रमण आपमें होगा। वह मैंने शुरू में ही आपसे कहा कि महावीर या उस तरह के कोई भी व्यक्ति आपको सत्य नहीं दे सकते किन्तु वे प्यास दे सकते हैं। वे जिस अनुभव की बातें कर रहे हैं वह अनुभव

आपकी समझ में नहीं पड़ेगा। नहीं पड़ सकता। लेकिन यह एक विशेष आदमी कह रहा है। इस आदमी में आपको कुछ दीख रहा है कि यह जो कह रहा है वह केवल कहने के लिए ही नहीं कह रहा। आपको प्रतीत होता है कि यह आदमी जो कह रहा है, जरूर उसे कुछ दिखायी पड़ रहा है जो सभी को नहीं दिखायी पड़ रहा। यह कुछ ऐसा अनुभव कर रहा है जो हम अनुभव नहीं कर रहे हैं। यह किसी अज्ञात दिशा की बातें कर रहा है जो हमें ज्ञात नहीं हैं। और आपके प्राण में एक कम्पन शुरू हो जायेगा। वह कम्पन आपको उस अज्ञात दिशा में ले जायेगा। असल में,

> शब्दों की दोहरी सार्थकता है। जो आपको ज्ञात है, शब्द उसका बोध देते हैं। जो आपको अज्ञात है शब्द उसकी प्यास देते हैं। तो अगर मैं ठीक से समझूं तो जो शब्द आपको बोध देते हैं वह बहुत अर्थ के नहीं हैं। अर्थ के वे शब्द हैं जो आपको प्यास देते हैं

क्योंकि वह आपको ज्ञात घेरे के बाहर उठाते हैं और अज्ञात की तरफ आकर्षित करते हैं।

ये सारे शब्द, 'ईश्वर', 'आत्मा', 'परमात्मा'—ये सारे शब्द, शब्द की तरह घूमते हैं हमारे ऊपर। इनमें कोई कण्टेंट नहीं है हमारे लिए। लेकिन ये शब्द भी हमको खींचते हैं। और ये शब्द इसलिए खींचते हैं कि जिन लोगों से ये शब्द आते हैं वे लोग हमें खींचते हैं। और तब हमारे भीतर एक क्रिया शुरू होती है कि जो भी ज्ञात है वहीं समाप्त नहीं है, जो मुझे ज्ञात है वह अन्त नहीं है। अभी और है ज्ञात होने को। जब तक आप परम आनन्द को उपलब्ध न हो जायें तब तक स्मरण रखें कि अभी बहुत है ज्ञात होने को। क्योंकि जो-जो अज्ञात है वही मेरे दुख का कारण है क्योंकि वही मेरे नियंत्रण के बाहर है।

इसे हम समझें तो परिपूर्ण आनंद की उपलब्धि सूचना है इस बात की कि अब कोई भी ऐसा इसके भीतर तत्व नहीं कि जो अज्ञात है, जो कि इसे परेशान करेगा।

असल में, आत्मा केवल बोध-मात्र की शक्ति है। बोध देती है। बोध का होना एक बात है, बोध से पीड़ित होना बिल्कुल दूसरी बात है। इस पैर में चोट लगे, इसका बोध होना कि चोट है, एक बात है। चोट की पीड़ा से पीड़ित होना बिल्कुल दूसरी बात है। बोध तो उसको नहीं होगा जो बेहोश है। उसे तो बोध परिपूर्ण रूप से होगा जो होश में है।

लेकिन यह होश होना कि पैर में दर्द है और यह बोध होना कि मैं दुखी हूं अलग-अलग बातें हैं। महावीर को भी अगर राह चलते कांटा गड़े तो पता पड़ेगा कि कांटा गड़ा। लेकिन इतना ही पता पड़ेगा कि कांटा गड़ा। यह वैसे ही पता पड़ेगा जैसे आपको कांटा गड़ता तो भी पता पड़ता। आप रास्ते पर चलते होते उनके किनारे, आपको कांटा गड़ता तो वह कहते, देखो तुम्हारे पैर में कांटा गड़ा। जैसे यह उन्हें पता चलता ऐसे यह भी पता चलता और वह कहेंगे, देखो यह मेरे पैर में कांटा गड़ा।—

लेकिन इससे उनकी चेतना
कहीं व्यथित नहीं होती
है। यह केवल बोध मात्र है।

यहां पर हवा आयी, मुझे बोध हुआ कि यहां से हवा आयी।—

यह जो बोध है, यह पीड़ा
नहीं है। पीड़ा, बोध जो
भी हो उसके साथ 'मैं' का
संयोग ही पीड़ा है।

क्योंकि मुझे बोध हुआ कि पैर में दर्द है। लेकिन मुझे बोध ऐसा थोड़े होता है कि पैर में दर्द है, मुझे बोध ऐसा होता है कि मुझमें दर्द है।—

बोध के साथ तादात्म्य दुख
लाता है। बोध के साथ
तादात्म्य सुख लाता है।
परन्तु बोध के साथ तादात-
म्यहीनता आनन्द लाती है।

यह मुझे बोध हुआ कि धन मेरा है तो सुख मालूम होता है। फिर कल बोध हुआ कि जो धन मेरा था वह चोरी चला गया। तो दुख होता है। धन मेरा था, यह सुख दे रहा था। धन मेरा अब नहीं रहा, यह दुख दे रहा है। आनन्द और सुख एक ही चीजें नहीं हैं। आनन्द उस स्थिति का नाम है जहां धन मेरा है, यह सुख भी मैं नहीं मानता, जहां मेरा धन गया यह दुख भी मेरा नहीं मानता।

जहां निपट मैं ही रह गया
हूं और किसी और चीज से
मेरा कोई सम्बन्ध नहीं,
असंग जहां मेरी स्थिति है
उस स्थिति में जो है, वह
आनन्द है।

● शरीर में कोई बड़ी तकलीफ होती है तो वह आत्मानंद ले सकता है कि नहीं ?

आत्मानन्द जो ले सके तो शरीर मेरा है यह उसे बोध ही नहीं होता। आपका शरीर स्वस्थ हो, चाहे बीमार हो। चाहे तकलीफ आपको पता चलती हो और चाहे तकलीफ आपको पता न चलती हो, उसका आत्मानंद से कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मानंद अगर आदमी को हो सके—अनुभव

हो सके उसका थोड़ा सा भी—तो वह थोड़ा सा अनुभव आपके सामने यह स्पष्ट कर जायेगा कि **आप शरीर नहीं हो**। तब इस शरीर के बाबत आपकी धारणाएं वैसी ही हो जायेंगी जैसे किसी और के शरीर के बाबत हैं। इस शरीर के बाबत आपकी धारणा करीब-करीब वैसी हो जायेगी जैसे नाटक में अभिनेता की अपने अभिनय के प्रति होती है। जैसे कि राम की सीता चोरी गयी होगी। वह एक बात रही होगी। बाल्मीकि ने लिखा है कि वह वृक्ष-वृक्ष से पूछते हैं, रोते हैं कि मेरी सीता कहां है? अब भी नाटक होता है, उसमें भी राम की सीता चोरी चली जाती है और वह भी वृक्ष-वृक्ष से पूछता है कि मेरी सीता कहां है। लेकिन इसके पूछने में और राम के पूछने में कुछ फर्क है। यह पूछ रहा है कि मेरी सीता कहां है और हो सकता है कि राम से ज्यादा भी अभिनय कर रहा हो। लेकिन यह अभिनय है और इसे परिपूर्ण ज्ञात है। पर्दे के पीछे जायेगा और रात भर मजे से सोयेगा। उसे उस सीता से कोई मतलब नहीं है जो पर्दे पर उसने कहा था कि चोरी चली गयी है। इसे बोध है कि जो सीता चोरी जा रही है वह मेरी नहीं है। इसे बोध है कि जो शरीर रो-चिल्ला रहा है कि सीता चोरी जा रही है वह भी केवल अभिनय है। जैसे ही व्यक्ति आत्मज्ञान की तरफ अग्रसर होगा, सामान्य जीवन अभिनय का रूप ले लेगा। और अभी तो अभिनय भी आप करें तो वह भी असलियत स्वरूप ले लेगा। अभी तो दिक्कत यह है कि अगर कहीं अभिनय भी करें तो थोड़ी देर में उसी में उलझ जायेंगे। आत्म-अज्ञानी आदमी अभिनय करके भी उसमें उलझ जाता है। और—

> ज्ञानी आदमी परिपूर्ण जीवन में रहकर भी उसे अभिनय जानता है और नहीं उलझता।

जिन्दगी तो चलेगी ही, जब तक जीवन है, चलेगी। बात केवल दो ही हैं—जिसे आत्मबोध होना शुरू होगा, उसे समस्त क्रियाएं अभिनय मात्र हो जायेंगी। इसलिए उसकी सारी क्रियाएं कुशल भी बहुत हो जायेंगी। पीड़ा और दुख अभिनय में नहीं होते। केवल दिखावा रह जायेगा। यह बोध कहीं आपको घना होने लगे कि मैं कुछ और हूं तो फर्क शुरू हो जायेंगे। दर्द शरीर में होगा तो पहले जैसा होता था अब भी होगा। शायद पहले इतना पता नहीं पड़ता था, अब ज्यादा पता पड़ेगा। यह तो परिपूर्ण चित्त शांत है। अब तो हर चीज ज्ञात होगी। जरा सा भी टिक-टिक हो

रहा है, वह भी पता चलेगा।— परिपूर्ण शांत चित्त में पता तो सब चलेगा। लेकिन जो-जो पता चलेगा उसके साथ तादात्म्य बुद्धि न रह जायेगी। उसके साथ आइडिंटिटी नहीं रह जायेगी। हम जानेंगे कि ऐसा हो रहा है। यह जानना होगा हमारा। यह हमारा ज्ञान होगा, लेकिन हम उससे संयुक्त हैं। या वह हममें हो रहा है यह बोध विलीन हो जायेगा।

वह कहीं हो रहा है जिसको हम जानने वाले हैं। धीरे-धीरे हमको इतना ही पता रह जायेगा कि मेरा सम्बन्ध केवल जानने की शक्ति से है और किसी चीज से नहीं है। धीरे-धीरे पता चलेगा कि मैं केवल ज्ञान मात्र हूं। और जो-जो मुझे ज्ञात होता है वह मेरे बाहर है।

●

परम सत्य को देखने के दो रास्ते

अगर आप परिपूर्ण शान्त होकर अनुभव करें 'जो है," उसका तो आपको संख्या में कुछ भी ज्ञात नहीं होगा। न एक का, न दो का, न तीन का। आपको यह भी ज्ञात नहीं होगा कि आपके अतिरिक्त भी कुछ है, आपको ज्ञात होगा केवल होने का, बोध मात्र होगा कि 'हूं'। आपको बोध होगा प्योर एक्जिस्टैंस का। उसे मोटे रूप से कह देते हैं कि वह एक है। एक कहने की गुंजाइश नहीं है वहां क्योंकि एक कहा तो दो हो गये। क्योंकि जिसने कहा, वह तत्काल उससे अलग हो गया जिसके लिए उसने कहा। एक कहा कि दो हो गये। वहां गुंजाइश नहीं है कहने की कि कितने हैं। असल में वहां कुछ भी कहने की गुंजाइश नहीं है। वहां केवल जानना मात्र है। और जानना इस बात का है कि जो भी है वह एक में और दो में, तीन में, किसी शब्द में प्रगट नहीं है। वह जो होना है, जहां कोई संख्या में विभाजन नहीं है, जब हम उसी को बुद्धि से और अशांत चित्त के माध्यम से देखते हैं तो वह अनेक में विभाजित दिखायी देता है। वे जो विभाजन हैं वे सत्ता के नहीं हैं वे विभाजन चित्त के हैं। यहां एक पागल आदमी आये इसी कमरे में। यहीं एक शांत आदमी इसी कमरे से गुजरे। कमरा यही होगा। पागल गुजरेगा तब भी यही

होगा, एक शांत आदमी गुजरेगा तब भी यही होगा। लेकिन दोनों के कमरे के अनुभव अलग अलग होंगे। पागल इसमें न मालूम क्या क्या देखेगा। कमरा यही होगा लेकिन दोनों के अनुभव अलग अलग होंगे क्योंकि दोनों के चित्त अलग अलग स्थिति में होंगे। हम जो देख रहे हैं, जब तक चित्त के द्वारा देख रहे हैं तब तक हमारे सब निर्णय गलत हैं। जब हम इसी को बिना चित्त के देखेंगे तब हमारे समस्त निर्णय सही होंगे, हम कुछ भी कहें, लेकिन उस वक्त कोई भी कुछ कहता नहीं है।—

लेकिन मुसीबत यह है कि
जो चित्त से देखते हैं वे ही
कहते हैं और जो चित्त से
देखते हैं सब गलत देखते हैं।
जो चित्त से नहीं देखते, वे
नहीं कहते, जो चित्त के
बिना देखते हैं वे जो भी
देखते हैं सही देखते हैं।

दो रास्ते हैं, 'जो है', उसको देखने को। एक चित्त का रास्ता है उसको देखने का, जिसके माध्यम से सब अनेक रूपों में दिखायी पड़ेगा। और एक अचित्त का रास्ता है। एक माइण्ड का, एक नो माइण्ड का, एक अशांत चित्त का, एक परिपूर्ण शांत का, जहां कि चित्त भी नहीं है। एक लहरों के माध्यम से जगत को देखने का रास्ता है कि लहर सब चीजों को तोड़े दे रही है और एक उस परिपूर्ण शांत झील के माध्यम से देखने का रास्ता है।

चित्त के माध्यम से जो देखता है, वह कभी परितृप्ति को उपलब्ध नहीं होता है। चित्त के माध्यम से जानता हुआ लगता है, जान कभी नहीं पाता। लगता है कि जान रहा हूं, लेकिन जान नहीं पाता। जान नहीं पाता तो पीड़ा और परेशानी कायम रहती है। और चित्त रोज रोज प्रश्न खड़े करते चला जाता है। जीवन भर वे प्रश्न वैसे के वैसे बने रहेंगे जो पहले दिन पूछना शुरू किये थे। चित्त कभी निष्प्रश्न स्थिति में नहीं ले जायेगा। निष्प्रश्न स्थिति में नहीं ले जाने का अर्थ है कि चित्त व्यथित होगा, पीड़ित होगा, परेशान होगा। क्योंकि जिस चित्त में प्रश्न है वह पीड़ा में होगा। प्रश्न जो हैं, पीड़ा के सूचक हैं। और प्रश्न जो हैं, वे कहीं अन्तर में एक व्यथा है उसके सूचक हैं। वह सब सूचना है, वह खोज रहा है, कहीं कुछ रास्ता मिल जाये। कोई रास्ता नहीं मिलता। चित्त से कोई रास्ता नहीं मिलता है, चित्त केवल प्रश्न देता है, कोई उत्तर नहीं देता। आज तक चित्त ने केवल प्रश्न दिये हैं, उत्तर नहीं दिये। तो अगर प्रश्न ही प्रश्न जानने हों तो चित्त दे सकता है। अधिक

प्रश्न हो जायेंगे तो विक्षिप्त हो जाइयेगा। थोड़े प्रश्न होंगे तो काम चलता रहेगा। फिर बहुत प्रश्न हो जायेंगे और उनका ओर छोर बांधे नहीं मिलेगा तो विक्षिप्त हो जाइयेगा। **चित्त प्रश्न देता है, चित्त की अंतिम परिणति विक्षिप्तता देती है।** चित्त का आन्दोलन प्रश्न पैदा करता है। फिर आन्दोलन इतने हो जायेंगे कि उनका सम्हालना मुश्किल हो जायेगा और आप विक्षिप्त हो जायेंगे। **यानी चित्त का परिपूर्ण विकास विक्षिप्तता है।** माइंड का पूरा विकास मेडनेस है। इसलिए दुनिया के, पश्चिम के विशेष तया बड़े विचारक जो पागल होते रहे वह आकस्मिक नहीं है। वह अनायास नहीं है। बड़ा विचारक पागल होगा ही, वह अनिवार्य परिणाम है। यानी विचारक अगर कंसिस्टेंट है और विचार करता चला जाये तो पागल हो जायेगा। जो विचारक पागल नहीं होते वे बड़े विचारक नहीं, वे बीच में कहीं रुक गये हैं, वे पूरे अंतिम कंक्लूजन तक नहीं ले गये विचार को। यानी अगर कोई विचारक अपने विचार को अंतिम निष्पत्ति तक ले जाये, वह लाजिकल कंक्लूजन जो है आखीर तक वहां तक ले जाये तो पागल होना अनिवार्य है। लेकिन भारत में महावीर, बुद्ध वगैरह पागल नहीं हुए क्योंकि वे विचारक नहीं हैं। वे दार्शनिक हैं। विचार की अंतिम परिणति विक्षिप्तता है और निर्विचार की अंतिम परिणति विमुक्ति है। विचार प्रश्न देगा, उत्तर नहीं। निर्विचार होकर प्रश्न नहीं रह जायेगा, उत्तर ही रह जायेगा। अगर उत्तर पाना हो तो निर्विचार में चलिये और अगर प्रश्न ही प्रश्न जगाने हों तो विचार में चलिये। जितने अधिक प्रश्न होंगे उतनी विचार-व्यथा होगी, उतनी पीड़ा होगी। जितने प्रश्न न्यून होंगे उतनी शांति घनीभूत होगी। निष्प्रश्न जिस दिन चित्त हो जायेगा उस दिन परिपूर्ण शांति का अनुभव होगा। विचार आनन्द में नहीं ले जा सकता क्योंकि विचार उत्तर में नहीं ले जा सकता। निर्विचार आनन्द में ले जायेगा इसलिए निर्विचार उत्तर में ले जायेगा। दो ही दिशाएं हैं, या तो विचार से जगत को देखते हैं-चित्त से; या निर्विचार से-अचित्त से जगत को देखते हैं।

● प्रश्न- निर्विचार होने से आनन्द मिलेगा। हाथ टूट जायेगा तो वह जुड़ेगा ही नहीं।

जैसे ही व्यक्ति आनन्द को उपलब्ध होगा उसे पता चलेगा, मेरे भीतर कुछ भी टूट नहीं सकता है जो मेरा है और जो मेरा नहीं है वह सब टूटा ही हुआ है। वह चाहे हाथ टूटा हुआ हो चाहे जुड़ा हुआ हो। उसका

हाथ टूटा हो या साजा हो वह दोनों स्थितियों में जानता है कि हाथ कोई माने नहीं है। उसकी आंख फूटी हो या काम करती हो वह दोनों स्थितियों में जानता है, यह आंख मेरी नहीं है। बहुत गौर से देखिये, आंख ठीक हो इसका मतलब है—'मेरी आंख ठीक होने का'। जैसे ही वह भीतर जाता है, वह जानता है कि जो आंख है वह 'मेरी' नहीं है। आप हैरान होंगे, आपका हाथ टूटता है तो ठीक होने की कल्पना होती है, किन्तु किसी और का टूटे तो नहीं उठती है। आपकी आंख फूटी हो तो ठीक होने का मन होता है। किसी और की फूटी हो तो उससे कोई मतलब नहीं होता। या कोई और भी ऐसा व्यक्ति हो कि जिससे अपना कोई नाता है, तो उसकी भी ठीक हो जाये—ऐसी इच्छा होती है। क्योंकि उसका भी कहीं न कहीं अपने से सम्बन्ध है और वह हमारा है।

● आंख बन्द करके आत्मा और शरीर अलग है, कितना टाइम सोचना है ?

यह तो सोचने की बात थोड़ी है। सोचिये मत। चुपचाप आंख बंद करके बैठिये और कुछ मत सोचिये, जो भी विचार चलते हों उनको चुपचाप देखते रहिये। उनको सहयोग मत दीजिये। जो विचार चलते हैं अपने आप चलते हैं उनको चलने दीजिये। आँख बन्द करके उनको सिर्फ देखते रहिये। कोई छेड़खानी मत करिये, उनको हटाने की भी कोशिश मत करिये। वह आते हैं आने दीजिये, नहीं आते मत आने दीजिये। आयें तो उनको देखते रहिये। एक पन्द्रह दिन इसी तरह आधा घन्टा बैठकर सिर्फ देखते रहिये। पन्द्रह दिन में पता चलेगा, रोज एक दो चार दिन तक बढ़ते हुए मालुम होंगे। तो वह ज्यादा से ज्यादा आयेंगे। घबड़ाइये मत, उनको आने दीजिये। अगर नहीं घबड़ाये और उनको आने दिया तो क्रमशः आप पायेंगे कि वह जिस मात्रा में बढ़े थे उसी मात्रा में कम होने लगे। एक पन्द्रह दिन के प्रयोग में पाइयेगा कि उनकी संख्या बहुत न्यून हो गयी है। वह कभी आते हैं, कभी खाली जगह छूट जाती है। जो खाली जगह छूट जायेगी उसमें आपको अपने आप अनुभव होगा कि शरीर से आत्मा अलग है। जब खाली जगह बड़ी होने लगेगी तो बड़ी देर तक अनुभव होगा कि आत्मा शरीर से अलग है। यह आपको सोचना नहीं है, यह अनुभव होगा। जब यह अन्तराल काफी लम्बा होगा इण्टरबल का, जब एक विचार आया और दूसरा बहुत देर तक नहीं आया तो वह जो खाली गैप होगा

बीच का, उसमें आपको अपने आप झलक मिलेगी कि मैं अलग हूं। आत्मा अलग है, यह सोचना नहीं है, यह तो दिखायी पड़ेगा। विचार भर चले जायें तो इसका दर्शन होगा। तो सोचिये मत, सोचने से कोई लाभ नहीं है। सोच सोच कर आपने समझ भी लिया कि आत्मा अलग है, वह फिजूल की बात है। वह तो कल्पना हो गयी हमारी। एक अन्धा यहां बैठा हुआ है और सोच रहा है कि खूब प्रकाश भरा हुआ है कमरे में। वह कितना ही सोचे, इससे आंख थोड़े ठीक होगी। वह जैसे ही सोचना छोड़ेगा, पायेगा, टकरा गया, गिर पड़े हैं। प्रकाश भरा हुआ है, यह अन्धे को सोचना नहीं है, उसको तो आँख ठीक करने के उपाय करने हैं। जिस दिन आंख ठीक होगी उस दिन बिना सोचे उसको दिखायी पड़ेगा कि प्रकाश है।—

> आत्मा सोची नहीं जाती, उसका दर्शन होता है। विचार और दर्शन में यही भेद है। हमको आत्मा का दर्शन करना है, विचार नहीं करना है।

जो विचार करेगा वह आत्मा को कभी नहीं पायेगा। वह आत्मा के सम्बन्ध में दूसरे ने जो कहा है उसी को दोहराता रहेगा। इससे कहीं नहीं पहुंचेगा।

● अगर सारे लोग आत्म आनन्द में लीन हो जायें तो फिर दुनिया में अनाज कैसे पैदा होगा ?

दुनिया में जो तकलीफ है वह अगर सारे लोग चित्त शांति को उपलब्ध हो जायें तो समस्या विलीन हो जायेगी और अनाज बेहतर ही होगा। क्योंकि चित्त शांत व्यक्ति जितना बेहतर अनाज पैदा कर सकता है, एक अशांत और विक्षिप्त आदमी नहीं कर सकता।—

> शांति का कर्म से विरोध नहीं है। अशांति का कर्म से विरोध है। अशांत आदमी जो भी कर्म करेगा, वह अकुशल होगा। क्योंकि अशांति उसके कर्म में बाधक होगी।

शांत आदमी जो भी कर्म करेगा वह उसमें कुशल हो जायेगा क्योंकि शांति कर्म में सहयोगी है। तो मेरी दृष्टि में अगर दुनिया में शांत लोग बढ़ते हैं तो दुनिया की कुशलता बढ़ेगी। जैसे कबीर था, कपड़े बुनता रहा। तो कबीर के बाबत् कहा जाता रहा कि वैसे कपड़े कभी किसी बुनकर ने नहीं बुने और जब वह अपने कपड़े को लेकर बाजार में बेचने जाता था तो लोग पागल की तरह टूट पड़ते थे। कबीर का कपड़ा खरीदना ही सुख

की बात है। कबीर से लोग कहते हैं कि ऐसे कपड़े कभी किसी ने बुने नहीं, तो कबीर कहता, इतनी शांति से भगवान के लिए कपड़े किसी ने नहीं बुने, मैं क्या करूँ ? मैं तुम्हारे लिए नहीं बुनता, भगवान के लिए बुनता हूं। क्योंकि तुम्हारे भीतर जो भगवान है मैं उसको जानता हूं, वह पहनेगा और उसके लिए तो कोई गलत चीज बुनी नहीं जा सकती और जब बुनता हूं तो भगवान में भरा हुआ बुनता हूं। तो भूल-चूक की तो गुन्जाइश नहीं है। तो कबीर ने जो कपड़े बुने थे वे कपड़े अर्थ रखते हैं और ही तरह का। एक गोरा कुम्हार हुआ, वह भी एक फकीर था। उसने जो घड़े बनाये अद्‌भुत थे। दुनिया में अब तक जो भी काम श्रेयष्कर हुआ है वह शांत लोगों ने किया है, अशांत लोगों ने नहीं। अशांत लोगों की वजह से परेशानियां हैं, उनकी वजह से अनाज नहीं होता। शांत लोगों की वजह से होगा। इतना ही स्मरण रखिये कि यह जो हमारे चित्त में धारणा घर कर गयी है शांत लोग छोड़कर भाग खड़े होते हैं यह गलत है। अशांत लोग भाग खड़े होते हैं, अशांति में घबराहट में। शांत लोग तो फिर वापस लौट आते हैं। महावीर और बुद्ध जंगल में भाग गये थे, तब वे अशांत थे। जब वे शांत हुए तो वापस लौट आये। अभी तक ऐसे किसी आदमी के बाबत सुना है जो शांत होकर वापस बस्ती में नहीं लौट आया है। अशांत आदमी बस्ती से बाहर गया जंगल में। लेकिन जब वह शांत हुआ तो वापस बस्ती में लौट आया। और उसके बाद की जिन्दगी, कोई खाली हाथ बैठे थोड़े ही रहे। महावीर अपनी उपलब्धि के बाद चालीस वर्ष तक सतत सक्रिय हैं। बुद्ध मरते क्षण तक सक्रिय हैं, मर रहे हैं जिस घड़ी बुद्ध, अंतिम घड़ी है और उन्होंने अपने शिष्यों से कहा कि अब तो मैं छोड़ता हूं देह। तो आनन्द ने कहा, अब हम किसी को आने नहीं देंगे। अब हम बाहर रुकते हैं, अब कोई आये नहीं। वह समाधि में लीन हो रहे हैं और तभी दूर से भागता हुआ एक युवक आया। और उसने आकर आनन्द से कहा कि फिर तथागत मुझे कहां मिलेंगे, अगर यह घड़ी मैं चूकता हूं। मुझे अन्दर जाने दें। मुझे तो उनसे वचन सुन लेना है जो मेरे जीवन को बदल दें। लेकिन आनन्द ने कहा—अब तो बहुत देर हो गयी। उसका नाम था सुभद्र, उससे कहा—सुभद्र, अब बहुत देर हो गयी। अब तो वे लीन हो रहे हैं। अब तो वे एक चरण नीचे उतर गये। अब तो वे देह को छोड़ रहे हैं, घड़ी भर में देह छूट जायेगी। लेकिन सुभद्र

बोला—तुम तो ठीक कह रहे हो, लेकिन फिर मुझे कब किस जन्म में ऐसा आदमी मिलेगा ? तो बुद्ध ने अन्दर से कहा—सुभद्र को रोको मत, उसे अन्दर आने दो, कोई यह न कहे कि तथागत पर एक पाप कलंक रह गया। कलंक रह जाये कि सुभद्र खड़ा कहता था कि मैं प्यासा हूं, मुझे दो और उन्होंने नहीं दिया। थोड़ी घड़ी भर रुक सकता हूं। सुभद्र को अन्दर आने दो। मरते समय भी बुद्ध सुभद्र को समझा रहे हैं कि शांति और आनन्द कैसे पाये जा सकते हैं।

बुद्ध की मृत्यु का कारण था एक गरीब लोहार। उसने बुद्ध को भोजन के लिए आमंत्रित किया अपने घर। बिहार में कुकुरमुत्ते जो वर्षा में ऊग आते हैं, उनको सुखाकर रख लेते हैं गरीब लोग सब्जी बनाने के लिए। तो उस गरीब लोहार ने कुकुरमुत्ते की सब्जी बनायी और बुद्ध को खिला दी। उनमें कभी-कभी जहर होता है। उस जहर से बुद्ध को शरीर में पीड़ा व्याप्त हुई। जब वे अपने आवास पर लौटे तो उन्होंने देखा कि शरीर में विष व्याप्त हो रहा है। तो उन्होंने कहा कि—जाओ, उस लोहार को कहना, कि तू अत्यन्त धन्यभागी है कि तथागत ने अंतिम अन्न तेरा ग्रहण किया। ऐसा सौभाग्य बहुत मुश्किल से उपलब्ध होता है। इसलिए जाकर कहो कि कहीं लोग मेरे मरने के बाद उसे जाकर परेशान न करें कि इसका भोजन खाने के कारण मेरी मृत्यु हो गई। उसको जाकर कहो और सारे गांव में यह ढिंढोरा पीट दो कि वह आदमी अत्यन्त धन्यभागी है कि तथागत ने अंतिम अन्न उसका ग्रहण किया। ऐसा सौभाग्य कल्पों में कभी किसी को मिलता है।

यह शान्त आदमी का लक्षण है जो अपने मरने के बाद भी किसी को परेशान नहीं करना चाहता। इसको अपनी मौत की परेशानी नहीं है। यह आदमी मर रहा है उसकी चीज खाकर किन्तु इसको परेशानी इसकी है कि मेरे मरने के बाद कहीं लोग उसको परेशान न करें कि तुम्हारे भोजन से उसकी मौत हो गयी। अशांत आदमी दूसरी तरह की व्यवस्था करता है।

मैंने एक कहानी पढ़ी है कि एक वृद्ध आदमी मर रहा है। उसके सात जवान लड़के थे, उसने उन सबको बुलाया। और उनसे कहा कि मुझे एक खास बात कहनी है। अगर तुम वायदा करो तो मैं कहूं। बड़े लड़के तो कोई उठे नहीं, छोटा लड़का नासमझ था, वह उठकर उसके पास गया। बाप ने उसके कान में कहा कि मेरी एक ही प्रार्थना है, इतना तू कर

देना, मैं तो मर ही रहा हूं। मर जाऊं तो मेरी लाश के टुकड़े बगल वाले के घर में डाल देना। तो जब मैं पकड़े हुए पड़ोसी को राजा के कर्मचारी द्वारा जेल में ले जाते देखूंगा, जब मेरी आत्मा उसको देखेगी तो मैं बड़ा परितृप्त हो जाऊंगा। मैं तो मर ही रहा हूं, उसकी सजा हो जायगी।

अशांति चारों ओर अशांति को पैदा करती है। शांति चारों तरफ शांति को पैदा करती है। शांत मनुष्य से इस जगत का कोई अहित असंभव है। हित ही हो सकता हैं। अशांत आदमी से इस जगत का कोई हित असंभव है। अहित ही हो सकता है।

तो मुझे धार्मिक साधना जगत की विरोधी नहीं दिखायी पड़ती। धार्मिक साधना में ही जगत का हित और साध्य दिखायी पड़ता है। अन्न कम हुआ है, अशांति से शायद। शायद शांति हो तो व्यवस्था हो जाय। शांत लोग सब कुछ व्यवस्थित कर सकेंगे।

● सारी धर्म की अभिव्यक्तियां एक सी क्यों नहीं हैं ?
जब अनुभव एक है तो अभिव्यक्तियां पृथक-पृथक क्यों हैं ?

जब एक सा अनुभव होता है अ को और ब को, **समस्त अनुभूति एक सी होती है धर्म की**। एक सी वह हो तभी वैज्ञानिक है। एक सी उनके बोलने में तो मालूम नहीं होती। कोई कुछ कहता हुआ मिलता है, कोई कुछ कहता हुआ मिलता है। बुद्ध कुछ कहते हैं, महावीर कुछ कहते हैं, क्राइस्ट कुछ कहते हैं। अगर बहुत गौर से देखें तो ये सारे लोग एक बात जरूर कहते हैं कि जो हम कह रहे हैं वह उसको प्रगट नहीं कर पा रहे, जो हम जान रहे हैं। ये सारे लोग यह कहते हैं कि हम उसको नहीं प्रगट कर पा रहे जो हम जान रहे हैं। तब जो ये कह रहे हैं, एक आर्टिफिसियल डिवाइस भर है। तब ये जो कह रहे हैं, उसे कहा नहीं जा सकता जो अनुभव हुआ है। उसे बिना कहे भी रह जाना बड़ा मुश्किल मालूम हो रहा है। जो अनुभव हुआ है उसे कहा नहीं जा सकता, बिना कहे रह जाना भी मुश्किल है। तो फिर एक ही रास्ता है, कुछ कृत्रिम व्यवस्था करते हैं उसकी तरफ संकेत करने की। ये संकेत करने की जो कोड व्यवस्थाएं हैं, सबकी अलग-अलग होती हैं। स्वाभाविक है अलग-अलग हों। इसलिए जैन एक तरह की बात करते हैं, ईसाई एक तरह की, मुसलमान एक तरह की। ये सबके आर्टिफिशियल डिव्हाइश हैं। ये सब अलग-अलग मालूम होते हैं।

इससे एक सारा विवाद सारे जगत में खड़ा होता है कि सारे लोग अगर एक ही सत्य को जान रहे हैं तो अलग-अलग क्यों कह रहे हैं। और तब अन्त में मतावलंबियों को यह दिक्कत पैदा होती है कि सत्य हमारे ही हैं, बाकी सब गलत कह रहे हैं। सब दूसरा दूसरा कह रहे हैं, वह गलत ही होगा क्योंकि सत्य तो एक ही हो सकता है। जबकि सचाई यह है कि ये सब के सब जो रूप हैं इनमें कोई भी सत्य नहीं है।—

> जो भी कहा जा सकता है वह सत्य नहीं है। वह अनुभूति तो सबकी समान है जो नहीं कही जा रही है, लेकिन उस नहीं कही जाने वाले की तरफ इशारा करने को इन्होंने जो व्यवस्था की है वह सबकी अपनी-अपनी कृत्रिम और काल्पनिक है।

सारी फिलोसिफी की सिस्टम्स जो हैं, काल्पनिक हैं। उनमें सत्य प्रगट नहीं हुआ है, लेकिन उनके माध्यम से अगर कोई चले तो किसी दिन उसको सत्य प्रगट हो सकता है।

हमारे चित्त की सारी स्थितियां, हमारे शरीर की आदतों से बंध जाती हैं। जैसे आप अनुभव करेंगे, कोई चिन्ता आ गयी, आप सिर खुजला रहे हैं। आप सिर क्यों खुजा रहे हैं? अगर ऐसे आदमी का हाथ पकड़ लीजिये तो वह अपनी समस्या हल नहीं कर सकेगा। मेरे एक वाइस चांसलर थे सागर युनिवर्सिटी के, डाक्टर गौर। उनकी आदत थी, वे जब मुकदमा करते थे तो अपने कोट का एक बटन घुमाते रहते थे। जब भी उन्हें कोई चिन्ता या खास दिक्कत हो तो उसे घुमाने लगेंगे और कुछ कहेंगे। वह प्रिवी कौंसिल में एक मुकदमे में गये थे। यह जाहिर बात थी कि वह जब इसको घुमाते तो जरूर कोई तरकीब निकाल रहे होते हैं। उनके विरोधी वकील ने उनके नौकर से वह बटन तोड़वा ली वह जो कोट में उनके होती थी। वह तो अपना कोट पहनकर गये। वह ठीक मुद्दे पर जब आये और बटन पर हाथ रखा तो बटन तो गायब। बटन नदारद, वह घबड़ा गये। वह तो एसोसिएशन था उनका। उस आदत के साथ उनका चिन्तन चलता था एकदम से। कुछ लोग हैं, सिगरेट पीते बैठेंगे तो चिन्तन चलेगा। आप हैरान होंगे, आप एक खास ढंग से बैठेंगे तो खास तरह का चिन्तन चलेगा। अगर आप उसी चिन्तन को दूसरी पोजीशन में बैठकर करना चाहें तो आप नहीं कर पायेंगे। आप हैरान होंगे कि करीब-करीब आपके

सब चिन्तन की स्थितियों में शरीर एक विशेष आसन ग्रहण कर लेता है। उसकी आदत हो जाती है। यह जो आसन है, यह जो आपकी रूटिन हैबिट है—उसको तोड़ने के लिए है। जैसे, आप बैठे हैं। आप कभी ख्याल नहीं करते, आप एक घड़ी भर को भी थिर नहीं बैठते। कभी पैर चलायेंगे, कभी हाथ चलायेंगे, कभी सिर हिला लेंगे, कभी गर्दन हिला लेंगे, कभी बाहें उचका लेंगे, कुछ न कुछ आप कर रहे हैं।—

यह जो आपकी आदत है
शरीर की अथिरता की,
यह आपके अथिर चित्त के
साथ संयुक्त हो गयी है
वर्षों की आदत से। अगर
इस शरीर को आप बिल्कुल
शिथिल छोड़कर बैठ जायं
थोड़ी देर तो आप हैरान
होंगे कि आपकी बहुत तबि-
यत होगी इसको हिलाने
डुलाने की, लेकिन अगर
आप न हिलायें डुलायें तो
इसके साथ ही आप पायेंगे
कि अथिर शरीर की
आदतों के साथ अथिर
चित्त की जो आदत है,
उसमें फर्क पड़ना शुरू हो
जायेगा। अगर शरीर भी
आप बिना हिलाये पांच
मिनट के लिए बैठ जायं,
बिल्कुल बिना हिलाये तो
आप अचानक पायेंगे कि
चित्त बहुत शान्त हो गया।
यह तो मैकेनिकल रूटिन
है बनी हुई,

तो इसलिए शरीर का भी उपयोग है, अगर उसको बिल्कुल शांत, शिथिल मुर्दे की तरह छोड़ दिया जाय। तो आप पायेंगे कि—

चित्त को शांत होने में
सहयोगी है। और फिर
असली तो चित्त को शांत
करना है, शरीर उसकी
भूमिका बन जाता है।
शरीर को शान्त करिये,
भूमिका बन जाती है।
चित्त को शांत करिये,
भीतर और जाने की
भूमिका बन जाती है।

अगर सीधी समाधि में कोई व्यक्ति जाये तो वह बहुत बात नहीं करता। चित्त का चिन्तन चले तो बात करेगा। चित्त के चिन्तन से वह सत्य को नहीं देता है। लेकिन सत्य की अभिव्यक्ति के माध्यम देता है। दुनिया में समाधि को बहुत लोग उपलब्ध हुए हैं लेकिन जो-जो लोग समाधि को उपलब्ध हुए हैं उन्होंने सत्य के बाबत कहा नहीं है। कहा थोड़े से लोगों ने है। विचार जो है,

सत्य तक ले जाने का तो माध्यम नहीं है, लेकिन सत्य अगर उपलब्ध हो जाये तो दूसरे तक कहने का माध्यम जरूर है। उसकी उपयोगिता है। सत्य तक ले जाने में नहीं, लेकिन सत्य अगर अनुभव हो जाये फिर दूसरे से कम्युनिकेट करने में उसकी उपयोगिता है। सत्य को जानने में तो विचार का कोई उपयोग नहीं है, लेकिन अगर विचार की आपमें क्षमता और शक्ति है और सत्य अगर आपको अनुभव हो तो उसको दूसरे तक कह देने में उसकी उपयोगिता है।—

इसलिए मैं विचार का विरोधी नहीं हूं। सत्य को जानने में वह माध्यम है, इसका विरोधी हूं।

मैं उसको, जो कि मूढ़ है और विचार नहीं करता, कोई मूल्य नहीं देता हूं। जो जड़ बुद्धि है और विचार नहीं करता उसके लिए मेरा कोई मूल्य नहीं है। जड़ बुद्धि विचार नहीं करता, इसलिए सत्य को जानता है, ऐसा मैं नहीं कहता। जो विचार करता है और विचार को छोड़ सकता है वह सत्य को जान सकता है। जो विचार ही नहीं करता, वह तो सत्य को जान ही नहीं सकता। यानी विचार करना, एक सीमा तक बहुत उपयोगी है परन्तु एक सीमा पर घातक हो जायेगा। विचार प्यास को जगाने में बहुत उपयोगी है, सत्य को जानने में घातक हो जायेगा। तो प्यास जगायेगा विचार। प्यास को घनीभूत करेगा विचार। इतना स्मरण रहे, कि जो प्यास को घनीभूत कर रहा है वहीं पानी नहीं है। प्यास और पानी में अन्तर है न! पानी कहीं और तलाश करना होगा। जो प्यास में ही पानी को तलाश करने लगे वह नासमझ है। मुझे प्यास लग रही है। तो प्यास में पानी नहीं खोजा जा सकता, प्यास तो पानी को खोजने की प्रेरणा भर है। तो विचार आपमें प्रश्न खड़े करता है, विचार आपमें जिज्ञासा पैदा करता है। विचार आपमें प्यास को घनी करता है। लेकिन जो विचार में पानी को खोजने लगे, वह नासमझ है। विचार की सामर्थ्य इतनी है कि प्यास घनी कर दे, पानी देने की सामर्थ्य नहीं है। पानी के लिए तो और भी गहरे जाना होगा, जहां विचार भी नहीं हो, वहां मिलेगा। लेकिन अगर विचार की एक श्रेणी रही हो तो जो सत्य मिलेगा उसे कहने में सुविधा होगी। नहीं तो कहा नहीं जा सकता।

●

संकलन : *डा० उर्मिला,* पी-एच.डी.
जबलपुर

अजमेर में आयोजन एक ध्यान शिविर का

(प्रस्तुत वृत्तांत समस्त भारत के जीवन जागृति केन्द्रों के प्रेमियों को अंतस् आवाहन है कि भगवान श्री के परमात्म प्रसाद को हम 'ध्यान-शिविरों' के माध्यम से कैसे बाँट सकते हैं। —सं०)

भगवान श्री के प्रवचन सुनाने का एक कार्यक्रम समाप्त हुआ था। शहर में यह तीसरा स्थान था, जहां हमने यह कार्यक्रम रखा था। मुझे और मेरे मित्र साधु सत्यतीर्थ (श्री लज्जा-शंकर गोयल) को बड़ी आशा थी कि समापन दिवस पर जो सुझाव हम श्रोताओं के सामने पेश करने जा रहे हैं, उससे गतिविधियों के लिए अच्छे परिणाम हमें प्राप्त होंगे। सौभाग्य से हमारे सुझाव एक मित्र के सदाचार के प्रस्ताव द्वारा, मात खाकर विदा हो गए। बात फिर वहीं रह गयी जहां थी। और झुंझलाहट का आनन्द लेकर, हम अपने अपने निवास स्थानों को लौट गये। १२ जून की रात्रि को अब कोई दूसरा कार्यक्रम हमारे पास नहीं था।

१३ जून की सुबह घर पर सक्रिय ध्यान के प्रयोग के बाद मैं बहुत बुरी तरह पहली बार रोया था और उस निर्बाध रुदन से एक विचार का जन्म हुआ कि अजमेर शहर में एक ध्यान शिविर आयोजित किया जाय। जोधपुर से मित्र साधु सत्य-प्रेम (श्री सत्यनारायण गर्ग) आए हुए थे, उन्हें फोन करके हमने बुलाया और यह प्रस्ताव पेश किया। अपने पूर्व निर्धारित सभी कार्यक्रमों को रद्द करके, उन्होंने न सिर्फ प्रस्ताव का समर्थन किया, बल्कि आयोजन के खर्चे के लिए अपनी तरफ से ४०) रुपये निकाल कर मुझे दिये। मा योग लक्ष्मी के नाम, भगवान श्री की सूचनार्थ व उनके आशीष की कामना के लिए तैयार पत्र पर, हम तीनों मित्रों ने हस्ताक्षर किए और शिविर का काम शुरू कर दिया।

पोस्टर छपकर आये, फिर हैण्ड-बिल छपे, बैनर बने और उनके वितरण तथा उपयुक्त स्थानों पर प्रद-र्शन की व्यवस्था के साथ-साथ हमने

प्रवेश-शुल्क इकट्ठा करना व पत्रों द्वारा मित्रों से सहयोग के लिए संपर्क स्थापित करना शुरू किया।

शिविर में पूरा कार्यक्रम हमने माउण्ट आबू के शिविरों के मुताबिक रखा था। भगवान श्री के प्रवचन टेप द्वारा सुनाये जाने को थे और हम इसके लिए विशेष प्रवचन चाहते थे। बम्बई के मित्रों को तो हमने परेशान किया ही, परन्तु यह जानकर हमें विशेष खुशी हुई कि भगवान का सिंहासन भी हम हिला पाये। साधु ईश्वर समर्पण, साधु राजा भारती, साधु योग सिद्धार्थ और मा योग-लक्ष्मी आदि सभी को हमने मुसीबत में डाला। शिविर के आयोजन और उसके निर्णय में मात्र ११ दिन का फासला था। बम्बई और अजमेर की दूरी का भी सवाल था, परन्तु इन सभी बातों के बावजूद भगवान श्री का हमारे ऊपर पूरा हाथ था। हमारे उत्साह और उमंग में कोई कमी नहीं थी और यन्त्र चालित की तरह हम काम में लगे थे। सभी द्वारों से हमें मुक्त समर्थन और सहयोग प्राप्त हो रहा था। भगवान श्री की कृपा से नये संभावनाओं के द्वार हमारे लिए उद्घाटित होते जा रहे थे। साधु सत्यप्रेम का पूरा परिवार सहयोग के लिए आगे आया और साधु सत्यतीर्थ के परिवार के एक-एक सदस्य ने अनूठी लगन से शिविर को सफल बनाने में अपनी तरफ से कोई कसर नहीं रखी।

मैं तो मूक द्रष्टा सा भगवान की लीला को घटित होते देख रहा था। मेरे तो परिवार के सदस्य भी शिविर में शामिल नहीं हो सके और स्वयं मेरे पास या मेरे वश का कहीं करने का कुछ भी नहीं था। शिविर स्थल निश्चित हुआ, खाने-पीने का सामान आ गया। माताओं व बहिनों ने भोजन व्यवस्था अपने हाथों में ली और २३ जून की सुबह साधु योग सिद्धार्थ प्रवचनों के सेट व भगवान श्री के आशीर्वाद के साथ अजमेर पहुंचे।

२३ जून की शाम को शिविर स्थल पर हम भीलवाड़ा से पधारे स्वामी योग प्रीतम के साथ मौजूद हैं। रात्रि आठ बजे भगवान श्री के प्रवचन व साधना के रूप में किये जाने वाले प्रयोगों के बारे में सामान्य जानकारी प्रदान की जानी है ताकि साधक इस त्रि-दिवसीय शिविर का पूरा लाभ उठा सकें। स्थानीय सभी शिविरार्थियों को हमने सूचना दे दी है, परन्तु बाहर से आने वालों के बारे में हम अनिश्चित हैं। समया-भाव व अन्य कारणों की वजह से कुछ मित्रों ने असमर्थता व्यक्त की है। इस अनिश्चितता की स्थिति में

से ही निश्चितता जन्म लेना शुरू कर देती है और एक के बाद एक मित्र शिविर स्थल पर पहुंचने शुरू होते हैं ।

चित्तौड़ से सर्वश्री बंशीलाल और भंवरसिंह आये हैं तथा नाथद्वारा से श्री राधाकृष्ण त्रिपाठी पधारे हैं । तीनों ही मित्र पहली बार शिविर में शामिल हुए हैं । जोधपुर से पधारे, स्वामी हरिप्रेम सरस्वती जितने मुक्त और मुखरित हैं, तो युनियारा के स्वामी नारायण भारती पूर्ण मौन और बिलकुल शान्त हैं, उनकी मौजूदगी का एहसास उन्हें भी होता होगा, इसमें भी हमें संदेह होता था । स्थानीय भाग लेने वाले मित्रों में प्रमुख थे, सर्वश्री परमानन्द शर्मा, बजरंगलाल, मखनलाल, डी० डी० अग्रवाल, जीतमल लूनिया । मेड़ता सिटी से पधारे स्वामी श्रीगोपाल सरस्वती ने प्राण प्रदान किए समस्त प्रयोगों को तथा प्रयोगों में जिस मस्ती और उन्मुक्तता के साथ वे उतरते थे, उसी का यह परिणाम था कि कोई भी नया व पुराना साधक प्रयोगों की सार्थकता व उनकी जीवंतता से अपरिचित नहीं रह पाया । कुछ स्थानीय मित्र अज्ञात कारणों की वजह से शामिल नहीं हो सके, परन्तु उनसे भी हमें जो सहयोग मिला, वह शिविर की सफलता का कारण बना । दोपहर के कीर्तन ध्यान के कार्यक्रम को पार्श्व संगीत प्रदान किया स्थानीय श्री इन्द्रचन्द्र और उनकी मित्र मण्डली ने, जिसका भरपूर आनन्द हम सभी ने लूटा ।

बम्बई से पधारे स्वामी योग सिद्धार्थ के प्रेम की गाथा और उनके उदार सहयोग की बात न कहूं तो शिविर की सफलता स्पष्ट न हो सकेगी । 'आये थे हरिभजन को, ओटन लगे कपास'—इस कहावत को उन्होंने उलटे रूप में चरितार्थ करके दिखाया । साहित्य की स्टाल लगाना, नियमित समय पर सभी कार्यक्रमों में भाग लेना और भगवान की लीला का गुणगान करते रहना, ये उनकी प्रमुख विशेषताएं थीं । भगवान श्री के आशीर्वाद की पूर्ण जीवंतता के प्रतीक के रूप में, वे हमारे साथ रहे । मात्र केसेट देने आये थे, परन्तु पूरी तरह लुटे बिना चैन न पा सके ।

२६ जून भी हो आयी । शिविर का यह समापन दिवस, उसकी सफलता के साक्षात्कार का दिन था । एक-एक साधक के चेहरे पर उभर आयी संतोष और शांति की झलक आयोजन की सफलता की सूचना दे रही थी । मेरा हृदय अनुग्रह से प्रभु के प्रति भर गया था और सभी साधक प्रेम की मूर्तियां बन गये थे ।

गले मिलते थे एक दूसरे के और प्रेमाश्रु बरबस आंखों से बहने लगते थे। 'जादू वह जो सिर चढ़ के बोले', तीन दिन में जो स्थिति उस जादूगर की अनुकम्पा ने निर्मित की, उसे देख पाना ही मेरे लिए सबसे बड़ा प्रसाद था। मुझे स्मरण हो आये लाओत्से के कुछ वचन जो उसने उत्तम शासक के गुणों को बताते हुए कहे हैं कि वह इस तरह मौजूद होता है कि प्रजा को उसकी उपस्थिति कभी महसूस नहीं होती और जब उसका कार्य पूरा होता है तो प्रजा यह सोचती व कहती है कि यह हमने किया है। इसी वचन को भगवान ने उत्तम गुरु के कार्य के बारे में भी कहा है और इस शिविर में उपस्थित और आयोजन के निमित्त सभी कार्य करने वालों ने यह बहुत स्पष्ट महसूस किया कि यह हमारी भूल ही होगी, अगर हम यह कहें कि हमने यह काम किया, जबकि सभी कुछ हमारे द्वारा ही किया गया था।

एक के बाद एक सभी मित्र अपने-अपने गन्तव्य स्थानों को लौट गए हैं, परन्तु आज भी जब यह मैं लिख रहा हूं तो सभी जैसे मेरे इर्द-गिर्द बैठे हुए मालूम पड़ते हैं, उनके प्रेम की गंध, उनका स्नेह स्निग्ध स्पर्श सभी कुछ बड़ी स्पष्टता से मैं महसूस करता हूं, जैसे वे मेरे शरीर के अंग बन गये हैं।

सबसे अधिक अनुग्रहीत हूं मैं श्री कृष्ण मुरारी बंसल का, जिन्होंने शिविर के कुछ चित्र अपने केमरे में बन्द करके हमारे सामने प्रस्तुत किये हैं, ताकि वह जो मैं लिखने में असमर्थ हूं उसकी एक झलक आपको दिखायी पड़ सके।

सभी संन्यासी मित्रों के प्रेम व सहयोग के लिए अनुग्रह प्रकट करने के बाद, मैं प्रभु को प्रणाम करता हूं जिसकी प्रेरणा पर और जिसकी शक्ति से यह सब संभव हो पाया और जिसकी कृपा ही है यह कि मैं अपनी यह बात भी आप तक पहुंचाने लायक बन सका।

सभी को प्रणाम करता हूं।

सविनय,

परमानंद भारती

जीवन जागृति केन्द्र,
आलोकावास, हाथी भाटा,
अजमेर (राज०)

जो तू ही है

प्रतिदिन संध्या समय
भय और क्लांति में खोकर
पाता हूं कि डूबता हुआ सूरज
मेरा मन ही है

टिमटिमाते धूमिल तारों से
कब किसे दृष्टि मिली है ?
मिथुन, कन्या राशिगण से
कब किसे तृप्ति मिली है ?
आकाश की औंधी गंगा से
किसने पाई है राह ?
आह ! यह कैसा प्रवाह !
'स्व'-कस्तूरी से अनभिज्ञ है मृगशिरा
इसलिए रोहिणी रोती है
वो देखो ! उधर प्राची में
नील नभ में—
अमृत कलश सा 'पूर्ण शून्य'
ज्योतिर्मान् सस्मित, धवल, उज्जवल
'रजनीश' ही है !

करता मधुर आह्वान्
(जैसे मैंने सुना)
ओं...'मित्र'...!
अपने सप्तचक्रों को सप्तऋषि बनाकर
स्थिर 'ध्रुव' सत्य बन जा
जो तू ही है !

• *अवधेश श्रीवास्तव 'मित्र'*
बिनेकी, सिवनी (म० प्र०)

लाओत्से से.....

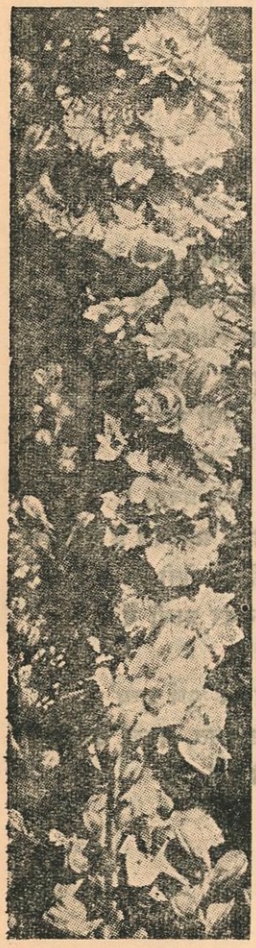

ओ लाओत्से...
तेरे बारे में ?
लिखना ही धोखा है
फिर भी चल पड़ी है कलम
हाथ में पड़कर किसी फरिश्ते के...
होने लगी है युवा ताओ तेह किंग तेरी
देने लगी है चिन्गारी अनेक विकल जीवों को...
अरस्तू की उपासक संस्कृति अब झांकने लगी है
सामने तेरे
लगता है अस्तित्व बचाना चाहता है आत्मघात से
लगता है बिना बनाए
नींव तेरी कहां जायेगा जमाना ?
अवतारों के अवतार व अथाह पूर्ण ने उठाई
तेरी वाणी,
मानो तू ही वापस चला आया...
या कहूं !
प्यारे मेरे प्रभु ने आड़ लेकर तेरी
बरसा दी अमृतधारा,
निकलने लगा शब्द शून्य से
शून्य में ले जाने... !
शून्य के यात्रिओं के लिए
निर्वाण के यात्रिओं के लिए...!!

● *मा योग गीता*
राजकोट (राज.)

अद्वितीय

गुरु-समर्पण

१५ जुलाई को गुरु पूर्णिमा थी। मैं बंबई में थी और गुरु मेरे माऊंट आबू में। चरण स्पर्श भी करूं तो कैसे ? यह पहला ही मौका था कि गुरु पूर्णिमा पर गुरु के पूजन से मैं इतनी दूर थी। कुछ खोया-खोया-सा लग रहा था। दूरी काफी खटक रही थी। हर क्षण गुरु महिमा की याद से भरा था। वर्ष में यह एक दिन गुरु के प्रति, शिष्यत्व धारण, भजन-पूजन एवं एक भव्य उत्सव में निकलता है। शिष्यत्व जिसमें जाग्रत हो चुका हो, उसे गुरुदेव के नजदीक न होने से एक विचित्र व्याकुलता होती है। खैर, अभी फासला ५०० मील का था।

सुबह करीब ४ बजे से ध्यान चल रहा था। ६ बजे पुनः कुछ विश्राम हेतु बिछौने में प्रवेश किया, तो एक स्वप्न था कि गुरुदेव बंबई आ गये और एक पूजन का भव्य उत्सव किसी बड़े जहाज पर रखा गया है, भीड़ बहुत ज्यादा है। मैं और मा योग लक्ष्मी भगवान श्री के दोनों तरफ हैं। समारोह के पश्चात गाड़ी में घर चले जाते हैं एवं स्वप्न टूट जाता है।

साढ़े सात बजे उठी स्नानादि से निवृत होकर, भजन के प्रोग्राम में गयी। लेकिन ध्यान में केवल गुरुदेव का ही ख्याल आ रहा था। बारह बजे लौटी कुछ पढ़ना चाहा, मन न लगा। करीब दो बजे से शरीर पर कुछ झटके से लगने लगे। हृदय पर कुछ धक्के से आये। मैं डोल उठी। जल्दी से मेरे ध्यान मंदिर में गयी, दरवाजा बन्द किया। जैसे ही लेटी कि सारे शरीर में कंपन होने लगा। कुछ गर्म चीज सारे शरीर पर फैल रही थी और मैं इतनी गर्म हो गयी कि मुझे मेरे एक-एक वस्त्र तक अलग कर देने पड़े। वस्त्र जैसे जलता अंगारा बन गये। एयर कन्डीशन फुल कूल पर था। एक ठंडा बड़ा कमरा और नितान्त मैं अकेली, फिर भी इतनी गर्म। धीरे से चादर का एक कोना गले पर डाला और ध्यान की

इस तीव्र गति में सहयोग देने लगी। मैं मेरे शरीर को दृष्टा-भाव से देख रही थी। गुरुदेव के समर्पण में ही यह घटित हुआ। प्रत्यक्ष लग रहा था। कम्पन पैर के अंगूठे से लेकर पूरे शरीर पर था। इतने में कपूर मिश्रित सुगंध से मैं सुगंधित हुई। प्रभु की अनुकंपा अपार है, अनुग्रहीत भाव से मैंने चद्दर से पूरा शरीर ढक लिया, कैसे मुंह भी ढका गया अपने आप सो तो मुझे मालूम नहीं। लेकिन मैं चादर के भीतर थी ऊपर से किसी अदृश्य छाया का दबाव मुझ पर पड़ने लगा। कम्पन ने और जोर पकड़ा। हंसते हुये गुरुदेव हवा में खड़े थे। मैं भौंचक प्रफुल्लित उन्हें देख रही थी। "याद किया था न तूने" गुरुदेव ने मुद्रा दिखायी। और कहा आ जा। तुरन्त मैंने अपने ही एक शरीर को गुरू के आलिंगन बद्ध पाया, द्रष्टा मैं भी मौजूद थी। मिलन गहरा था। रोयां-रोयां पुलकित था। लेकिन यह कोई स्वप्न न था। ध्यान की जाग्रत गहरायी थी। मैंने अपने को धीरे-धीरे शान्त होते देखा। गुरुदेव ने विदा ली। शान्त, मौन मैंने आंखें खोलीं। घड़ी में ६ बजे थे। शरीर में एकदम निर्मलता एवं ताजगी थी। ध्यान आया कि तीन घंटे गुरुदेव का साथ रहा? आश्चर्य! हाल आंखों देखा, मिथ्या भी कहूं तो कैसे। गुरु की अनुकंपा अपार है। क्या प्रेम की परिधि पर मिलन इतनी जल्दी हो जाता है? दूर फिर भी नजदीक, प्रत्यक्ष फिर भी अप्रत्यक्ष गुरुदेव के सूक्ष्म शरीरों की कोई गणना नहीं है। क्या अबूझ एक अबूझ ही रहेंगे। उन्हें मेरा कोटि कोटि प्रणाम।

● *मा आनन्द मीरा*
बंबई

अनुभव ही है मार्ग जानने का

आस्तिक तर्क से जीत नहीं सकता। लेकिन फिर भी अंततः आस्तिक ही जीत जाता है। और उसका कारण तर्क नहीं है। उसका कारण एक दूसरा आयाम है—अनुभव का। कुछ है जीवन में जो अनुभव से ही जाना जा सकता है; और जितना हो श्रेष्ठ, जितना हो सत्य, और जितना हो सुन्दर, जितना हो गहन, जितना हो दुरूह, जितना हो रहस्यमय उतना ही अनुभव ही मार्ग रह जाता है।

[भगवान श्री रजनीश का १ अप्रैल ७२ को कैवल्य उपनिषद पर माउण्ट आबू साधना शिविर में दिया गया पन्द्रहवां प्रवचन।]

इस सूत्र में प्रवेश के पहले कुछ शब्दों को समझ लेना जरूरी है। जिसका कोई शरीर नहीं है फिर भी जो है, जिसका कोई रूप नहीं है फिर भी जो है, जिसका कोई आकार नहीं है फिर भी जो है—उसके सम्बन्ध में इशारा है। जो हमें दिखायी पड़ता है—वह भी है। मैं आपको देखता हूं, तो जो मुझे दिखायी पड़ता है—वह आप नहीं हैं। निश्चित ही जो आप हैं—वह मेरी आंख की पकड़ के बाहर छूट जाता है। आपके हाथ दिखते हैं, पैर दिखते हैं, शरीर दिखता है, चमड़ी दिखती है, आंख-कान दिखते हैं—आप मुझे दिखायी नहीं पड़ते।

जैसा आप अपने को भीतर से जानते हैं, वैसा आपको बाहर से जानने का कोई उपाय नहीं। हम दूसरे में भी आत्मा मान लेते हैं सिर्फ इसलिए कि हम अपने में आत्मा का ख्याल कर पाते हैं, अन्यथा दूसरे का शरीर ही दिखायी पड़ता है—उसके भीतर कुछ है या नहीं वह तो दिखायी नहीं पड़ता। स्वयं के भीतर जरूर शरीर से ज्यादा की प्रतीति हमें होती है, इसीलिए हम अनुमान कर लेते हैं कि दूसरे के भीतर भी होगा; लेकिन दूसरे में हमें वह दिखायी नहीं पड़ता। और जो दिखायी पड़ता है वह उससे भिन्न है। इसलिए एक दिन ऐसा होता है कि जिसे हमने कल तक जीवित जाना था, वह मरा हुआ पाया। सब कुछ वही है जो कल तक था, फिर भी कुछ भी वही नहीं रहा।

जहां तक दिखायी पड़ने का सम्बन्ध है, सब कुछ दिखायी पड़ता है अभी भी—जो इन्द्रियों की पकड़ में आता था वह अब भी मौजूद है; लेकिन इन्द्रियों की पकड़ में जो नहीं आता, वह तिरोहित हो गया—वह हट गया। वह जो हट गया है, वह हटता हुआ भी कभी दिखायी नहीं पड़ता। शरीर टूटता है, नष्ट होता है, मृत होता है पर शरीर को छोड़ता हुआ कभी कोई दिखायी नहीं पड़ता। इस कारण वैज्ञानिक सदा से कहते रहे हैं कि कुछ है नहीं भीतर। आत्मा सिर्फ शरीर का ही एक गुण-धर्म है—शरीर के अंगों का ही एक जोड़ है। जैसे घड़ी चलती है तो कोई प्राण तो उसको चलाता नहीं है, यन्त्र का ही जोड़ है। यन्त्र बिखर जाता है तो हम यह नहीं पूछते, इसकी आत्मा कहां चली गई? आत्मा उसमें थी ही नहीं।

वैज्ञानिक कहते रहे हैं अब तक, भौतिकवादी चिंतक कहते रहे हैं अब तक कि शरीर भी एक यन्त्र है; और उसके भीतर यन्त्र के संयोग से जो क्रिया फलित हो रही है, वही जीवन है। जीवन इस शरीर से भिन्न नहीं है। यही सतत विवाद का कारण रहा है। और मनुष्य जाति दो वर्गों में बंट गई है जाने-अनजाने।

एक वर्ग है जो मनुष्य को यन्त्र नहीं मानता और एक वर्ग है जो मनुष्य को यन्त्र मानता है। जो वर्ग मनुष्य को यन्त्र नहीं मानता वह पूरे जगत को भी यन्त्र नहीं मान सकता।

जो वर्ग मनुष्य को यन्त्र मानता है, फिर और कोई चीज नहीं बचती जिसको यन्त्र मानने में बाधा हो। फिर सारा जगत एक यन्त्र हो जाता है। भौतिकवादी की दृष्टि है कि जगत यन्त्रवत है। उसमें कोई चैतन्य पृथक से नहीं है। आध्यात्मवादी की

दृष्टि है कि जगत यन्त्रवत नहीं है। यन्त्रवत जो दिखायी पड़ रहा है वह जगत का केवल बाह्य आवरण है। उसमें छिपा हुआ अदृश्य भी है। इस अदृश्य को कैसे प्रमाणित किया जाए? इस अदृश्य को कैसे अनुभव किया जाए? इस अदृश्य को कैसे स्वीकार करें? कैसे उसके प्रति श्रद्धा जागे?

तर्क से यह नहीं हो सका अब तक। अध्यात्मवादिओं ने बहुत तर्क दिये हैं लेकिन सभी व्यर्थ गये हैं। अध्यात्मवादियों ने बहुत से प्रमाण दिये हैं लेकिन सब बचकाने हैं। अध्यात्मवादी तर्क नहीं दे पाये। भौतिकवादिओं ने जो भी तर्क दिये हैं, बड़े गंभीर हैं, महत्वपूर्ण हैं। अगर तर्क ही निर्णायक हो तो नास्तिक ही जीतेगा।

> आस्तिक तर्क से जीत नहीं सकता। लेकिन फिर भी अंततः आस्तिक ही जीत जाता है। और उसका कारण तर्क नहीं है। उसका कारण एक दूसरा आयाम है—अनुभव का। कुछ है जीवन में जो अनुभव से ही जाना जा सकता है; और जितना ही श्रेष्ठ, जितना हो सत्य, और जितना हो सुन्दर, जितना हो गहन, जितना हो दुरूह, जितना हो रहस्यमय उतना ही अनुभव ही मार्ग रह जाता है।

एक अंधा आदमी है। प्रकाश के सम्बन्ध में कोई भी तर्क नहीं है समझाने का कि हम उसे समझा पायें कि प्रकाश है। या आप सोचते हैं कि कोई तर्क है जो अंधे आदमी को भरोसा दिला दे कि प्रकाश है। अब तक कोई तर्क नहीं खोजा गया। अंधे आदमी को प्रकाश का भरोसा दिलाना तो दूर अंधे आदमी को अंधेरे का भी भरोसा नहीं दिलाया जा सकता, अंधेरे का भी।

आम तौर से हम सोचते हैं कि शायद अंधे को अंधेरा दिखाई पड़ता होगा, तो हम गलत सोचते हैं। अंधे को अंधेरा भी नहीं दिखायी पड़ता, क्योंकि अंधेरा देखने के लिए भी आंख चाहिए। ऐसा मत सोचना आप कि अंधा अंधेरे में जीता है। **अंधेरे को देखना भी आंख के द्वारा ही संभव है।** प्रकाश और अंधेरा दोनों ही आंख के अनुभव हैं। हम अंधे से यह भी नहीं कह सकते कि प्रकाश अंधेरे के विपरीत है, क्योंकि जिसे अंधेरे का भी कोई अनुभव नहीं उसे उस आयाम का कोई अनुभव ही नहीं है।

उसके जगत में प्रकाश और अंधेरे का कोई अस्तित्व ही नहीं है। उसके

भीतर प्रकाश और अंधेरे के सम्बन्ध में कोई सूचना कभी ग्रहण नहीं की गई। तो तर्क हम कितने ही दें, वे तर्क बेमानी होंगे। उनका कोई अर्थ नहीं होगा। और अंधे को श्रद्धा उन तर्कों पर नहीं आ सकती।

सच तो यह है कि अंधे के सामने प्रकाश के लिए जो तर्क देता है वह नासमझ है। अंधा सिर्फ अंधा है, वह तर्क देने वाला मूढ़ है। मूढ़ इसलिए है कि वह यह समझ ही नहीं पा रहा कि प्रकाश के लिए सिर्फ एक ही तर्क है—वह आंख है। अगर मेरे पास कान नहीं है तो मेरे लिए अस्तित्व में ध्वनि का कोई भी उपाय नहीं है कि मैं जान पाऊं कि ध्वनि है।

इस सम्बन्ध में एक बात बहुत गहरी ख्याल में ले लेनी जरूरी है। कठिन पड़ेगी थोड़ी, लेकिन इधर विज्ञान भी इस बात पर झुकाव देता चला गया है। आप कभी देखते हैं—आकाश में थोड़े बादल हैं, थोड़ी वर्षा हो रही है, एक कोने से सूरज निकल आया है बादलों को चीर कर और इन्द्रधनुष बन गया है। क्या आपने कभी यह सोचा है आपके मन में कि अगर आप आँख बन्द कर लें तो भी इन्द्रधनुष आकाश में रहेगा कि नहीं रहेगा? आप निश्चित ही कहेंगे कि मेरी आंख से क्या लेना-देना। मैं आंख बन्द कर लूं इन्द्रधनुष तो रहेगा। लेकिन विज्ञान कहता है कि आपके आंख बन्द करते ही इन्द्रधनुष नहीं रहता।

क्योंकि इन्द्रधनुष के बनने के लिए सूरज की किरणें चाहिए, पानी की बूंद चाहिए और आंख चाहिए। तीन चीजें चाहिए। सूरज की किरण एक खास कोण पर पानी की बूंद से और आंख पर एक खास कोण पर गिरे तो इन्द्रधनुष निर्मित होता है। इन्द्रधनुष आप वहां देखते हैं ऐसा मत समझना, आपकी आंख भागीदार है इसका निर्माण करने में। इसका मतलब यह हुआ कि अगर जमीन पर कोई देखनेवाला न हो तो कभी इन्द्रधनुष निर्मित नहीं होगा। इन्द्रधनुष के निर्माण में आपकी आंख उतना ही हाथ बंटाती है जितना सूरज, जितना पानी की बूंद।

इन्द्रधनुष के सम्बन्ध में तो यह समझ लेना आसान है। लेकिन क्या आप समझते हैं कि सूरज की किरण के सम्बन्ध में भी समझ लेना आसान होगा? अगर जमीन पर आंख न हो तो प्रकाश नहीं होगा। यह जरा थोड़ा कठिन मालूम पड़ेगा, लेकिन यह भी कठिन नहीं है। वैज्ञानिक अब उसके लिए बिल्कुल राजी हैं कि अगर जमीन पर कोई भी आंख नहीं हो तो प्रकाश नहीं होगा; क्योंकि

प्रकाश के भी बनने में, प्रकाश के अनुभव में भी सूरज की इतनी ही जरूरत है जितनी आंख की। प्रकाश, आंख और सूरज की किरण के बीच का सम्मिलन है। आंख जहां सूरज की किरण से मिलती है वहां प्रकाश पैदा होता है। प्रकाश एक अनुभव है। प्रकाश एक वस्तु नहीं है।

इसे ऐसा समझें—एक कमरे में आप बैठे हुए हैं। कई रंग के चादर लटके हुए हैं। कुर्सियां अलग रंग की हैं। किताबें बहुत रंग की रखी हैं। दीवाल रंगी हुई हैं, कई रंग की हैं। क्या आपने कभी ख्याल किया कि जब आप प्रकाश बुझा देते हैं तो आपकी लाल कुर्सी लाल नहीं रह जाती, और आपके हरे पर्दे हरे नहीं रह जाते। आप सदा रात को सोते होंगे तब आप यही सोचते होंगे अपने मन में—अंधेरे में अपने कमरे का जो पर्दा है वह अभी भी हरा होगा, तो आप गलती में हैं।

यह वैज्ञानिक तथ्य मैं कह रहा हूं। इसका धर्म से कुछ लेना-देना नहीं। विज्ञान कहता है कि पर्दे के हरे रहने के लिए सूरज की किरणें चाहिए, आदमी की आंख चाहिए। अगर ये दोनों मौजूद न हों तो यह पर्दा हरा नहीं हो सकता। क्योंकि जो पर्दा आपको हरा दिखायी पड़ता है वह हरा होता नहीं है। सिर्फ सूरज की किरणें उस पर पड़ती हैं, या किसी भी प्रकाश की किरणें पड़ती हैं। किरण में सात रंग हैं। जब भी किसी चीज पर किरण पड़ती है तो वापिस लौटती है, और कोई वस्तु रंगीन नहीं है। हर वस्तु इन सात किरणों में से कुछ किरणों को पी लेती है, आत्मसात कर लेती है, कुछ किरणों को वापिस लौटा देती है। यह बहुत मजे की बात है कि हरे पर्दे का मतलब होता है कि इस पर्दे के कपड़े ने सब किरणें पी लीं, सिर्फ हरी किरण को वापिस लौटा दिया।

इसलिए जब वह लौटती हुई हरी किरण आपकी आंख पर पड़ती है, तब वह पर्दा हरा दिखायी पड़ता है। यह बहुत उल्टा मालूम पड़ेगा। हरा पर्दा हरी किरणों को छोड़ देता है पीता नहीं, बाकी सबको पी जाता है। हरा बिल्कुल नहीं है, बाकी सब हो भी सकता है। हरे को छोड़ देता है। और वह जो हरी किरण छूटती है वापिस, जब आंख से टकराती है तो पर्दा हरा मालूम पड़ता है उस हरी किरण की वजह से।

लेकिन अगर कमरे में कोई आंख ही नहीं। समझ लो कमरे में प्रकाश है लेकिन आंख नहीं, दरवाजा बन्द है, भीतर कोई भी नहीं है तो पर्दा हरा नहीं होगा, कुर्सी लाल नहीं होगी। दीवाल पीली नहीं होगी।

किताबों में अक्षर काले नहीं होंगे और पन्ने सफेद नहीं होंगे। और रात के अंधेरे में न आंख है न प्रकाश, सब चीजें बे-रंग हो जाती हैं।

प्रकाश का अनुभव किरणों की मौजूदगी और आंख की मौजूदगी का सम्मिलित अनुभव है। इसीलिए अंधे आदमी को बिना आँख के, प्रकाश के अनुभव करवाने की कोई भी व्यवस्था नहीं है। या प्रकाश की प्रतीति करवाने के लिए कोई भी तर्क उपयोगी नहीं है। हम भी समझ जायेंगे अंधे को समझाने में—कि समझाना व्यर्थ है, बेहतर है कि चिकित्सा करें।

लेकिन मनुष्य के भीतर जो आत्मा है उसके लिए हम तर्क से निर्णय करने चलते हैं। वह भी अनुभव है। और जब तक ध्यान की आंख उपलब्ध न हो तब तक वह अनुभव नहीं होता। इसलिए ध्यान को तीसरी आँख कहा है। वह आंख उपलब्ध हो तो जो दिखायी पड़ता है वह आत्मा है; और तब जो दिखायी पड़ता है उसके हाथ-पैर नहीं हैं, उसका शरीर नहीं है, वह अरूप है, वह मात्र चैतन्य है। और तब जो दिखायी पड़ता है अगर वह अपनी परिपूर्ण शुद्धता में अनुभव में आये तब यह सूत्र ख्याल में आयेगा।

इस सूत्र में ऋषि ने कहा है : जिसके न हाथ है, न पैर, और न जिसके सम्बन्ध में चिन्तन किया जा सकता है। क्योंकि चिन्तन वहीं तक किया जा सकता है जहां तक इन्द्रियों की पकड़ में कुछ आता हो। चिन्तन की सीमा इन्द्रियों की सीमा है। इन्द्रियां जहां तक देख पाती हैं चिन्तन वहीं तक जाता है। चिन्तन इन्द्रियों का अनुगामी है।

आपकी आंख ने जो देखा है, आपका मन उसका चिन्तन कर सकता है। आपकी आंख ने जो नहीं देखा है, आपका मन उसका चिन्तन नहीं कर सकता है। लोग आम तौर से कहते हैं कि फलां बात कल्पना है, लेकिन कल्पना भी आपके अनुभव के ही आधार पर होती है। कोई कल्पना वस्तुतः कल्पना नहीं होती, सिर्फ दो-तीन अनुभवों का जोड़ होती है। आप कह सकते हैं कि मैने ऐसा कोई घोड़ा नहीं देखा जो सोने का बना हो और आकाश में उड़ता हो, लेकिन मैं कल्पना कर सकता हूं।

लेकिन ध्यान रखिये, आपने उड़नेवाली चीजें देखी हैं, सोने की चीजें देखी हैं, घोड़ा देखा है और उन तीनों को आप जोड़ भर तो रहे हैं। उसमें कल्पना कुछ नहीं है। इन तीन अनुभवों को आप जोड़ रहे हैं। लेकिन तीनों आपके अनुभव हैं। आप एकाध ऐसी कल्पना अगर कर सकें जो आपका अनुभव ही न हो, तो आप

जगत में एक चमत्कार घटित कर देंगे। अब तक ऐसा हुआ नहीं। आप जो भी सोच सकते हैं, वह आपकी इन्द्रियों के द्वारा दिया गया अनुभव है।

मन इन्द्रियों का राजा नहीं है, इन्द्रियों का अनुगामी है। मन इंद्रियों का मालिक नहीं है, केवल इन्द्रियों की छाया है। आंख देती है, कान देता है, हाथ देता है, नाक देती है, जबान देती है—ये सारे अनुभव मन इकट्ठा कर लेता है और इनके पीछे चलता है। आपकी पांच इन्द्रियां हैं, उन्होंने जो-जो आपको दिया है उसके अतिरिक्त क्या आपका मन कभी ऐसी कोई चीज कभी सोच सकता है, जो इन पांच इन्द्रियों से सम्बन्धित न हो ? एक भी बात नहीं सोच सकता।

इसे थोड़ा हम और तरह से समझें तो शायद आसानी पड़े। जमीन पर बहुत तरह के प्राणी हैं। कुछ प्राणी हैं जिनके पास चार इन्द्रियां हैं। मान लें उनके पास आंख नहीं है तो उन प्राणियों के चिन्तन में प्रकाश कभी भी रूप नहीं लेगा। कुछ प्राणी हैं जिनके पास तीन इन्द्रियां है। समझ लें उनके पास आंख-कान नहीं हैं तो उन प्राणियों के जीवन में प्रकाश और ध्वनि का कभी कोई अनुभव नहीं होगा, न चिंतन होगा, न विचार होगा, न स्वप्न होगा।

इससे हम जरा उल्टा सोचें कहीं किसी उपग्रह पर। क्योंकि वैज्ञानिक कहते हैं कि कोई पचास हजार ग्रहों पर जीवन होना चाहिए—इसकी संभावना है। अगर कहीं-कहीं जीवन हो और वहां जो व्यक्ति हों उनके पास छः इन्द्रियां हों, तो उनकी छठवीं इन्द्रिय की हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं कि उससे वह क्या जानते होंगे ? चार इन्द्रियां हो सकती हैं, तीन हो सकती हैं, तो छः भी हो सकती हैं, सात भी हो सकती हैं, दस भी हो सकती हैं।

अगर दस इन्द्रियों वाला प्राणी हमें मिल जाये तो हम सोच भी नहीं सकते कि वह क्या कहता है ? और वह कहे भी, तो भी हमारी समझ में न आयेगा। उसके शब्द ही हमें बेमानी लगेंगे, अर्थहीन लगेंगे। हमारे पास पांच हैं तो हम सोचते हैं कि पांच इन्द्रियों पर जगत समाप्त हो गया। जिनके पास चार हैं, वे सोचते होंगे कि चार अनुभवों में जगत की समाप्ति हो गई। जिनके पास तीन हैं, वे सोचते हैं कि तीन में ही जगत पूर्ण है।

अमीबा है, बैक्टेरिया है, बहुत छोटे-छोटे जीवाणु हैं—उनके पास सिर्फ शरीर है कोई इन्द्रियां नहीं। कहें कि वे ऐकेन्द्रीय हैं, सिर्फ शरीर है उनके पास।

प्राथमिक जीवाणु अमीबा, उसके पास सिर्फ देह है; न आंख है, न कान है, कुछ और नहीं है। वह सिर्फ शरीर से ही जीता है। शरीर के द्वारा ही वह भोजन भी उपलब्ध करता है। शरीर से ही सांस लेता है, शरीर से ही सरकता है। उसके पास पैर नहीं हैं। शरीर ही उसका बड़ा होता चला जाता है। एक सीमा के बाद उसका शरीर दो टुकड़ों में टूट जाता है—वही उसकी संतप्ति है। उसकी कोई इन्द्रियां नहीं पर उसका भी कुछ तो अनुभव होगा जगत का। वह जगत का अनुभव सिर्फ स्पर्श का होगा। चीजों से टकराता होगा, छूती होंगी चीजें, बस स्पर्श का अनुभव होगा।

उसका जगत बड़ा सरल जगत होगा। उसमें सिर्फ एक ही घटना घटती है—स्पर्श की।

उस अमीबा को समझाने का कोई भी उपाय नहीं कि यहां और घटनाएं भी घटती हैं।

ऋषि ने कहा है : जिसका चिंतन नहीं किया जा सकता—क्योंकि इंद्रियां जितना जानती हैं, उतने का ही चिंतन हो सकता है—उसे इन्द्रियां कभी भी नहीं जानतीं। न आंख उसे देखती है, न कान उसे सुनते हैं, न हाथ उसे छूते हैं। वह इन्द्रियों के पार रह जाता है। वह जो इन्द्रियों के पार है, वह मन से सोचा नहीं जा सकता। चिंतन उसका असंभव है, मनन उसका असंभव है। जिसके न हाथ हैं न पैर, न जिसके सम्बन्ध में चिन्तन किया जा सकता है, वह सत्य अर्थात् परब्रह्म मैं ही हूं—अचिंतनीय।

वह जो है, अचिन्तनीय अचिन्त्य है, अपरिभाष्य है, अतीन्द्रिय है—वह मैं ही हूं। इसे भीतर से जानेगा तो ठीक होगा।

आपको अपना पता चलता है। इतना तो तय है कि आपको अपने होने का पता चलता है। लेकिन क्या कभी आपने सोचा है कि जब दूसरी चीजों का आपको पता चलता है तो इन्द्रियों के द्वारा चलता है। आपको स्वयं के होने का पता किस इन्द्रिय द्वारा चलता है? प्रकाश का पता चलता है तो आंख से चलता है, ध्वनि का पता चलता है तो कान से चलता है। लेकिन आपको अपना पता किस इन्द्रिय से चलता है?

आप हैं—ऐसा अनुभव आपको किस इन्द्रिय से होता है? ऐसा अनुभव तो होता ही है कि मैं हूं। नास्तिक को भी होता है, पदार्थवादी को भी होता है। और अगर कोई यह भी कहे कि मैं नहीं हूं तो भी कम से कम कहने के लिए भी, इन्कार करने के लिए भी स्वयं को उसे स्वीकार करना पड़ता है। 'मैं' को

इन्कार नहीं किया जा सकता क्योंकि उसे इन्कार करने में भी स्वीकार करने की मजबूरी है।

मुल्ला नसरुद्दीन एक दिन अपने मित्रों को अपने घर ले आया। काफी हाऊस में बैठकर बातचीत में काफी आगे बढ़ गया। और बातचीत यहां तक पहुंच गई कि मुल्ला ने कहा कि मुझसे उदार व्यक्ति इस गांव में दूसरा नहीं। यह सब चर्चा थी। मुल्ला को पता नहीं था कि उपद्रव हो जाएगा। बीस-पच्चीस मित्र इकट्ठे थे। उन्होंने कहा कि अगर ऐसा है तो हमने कभी तुम्हारा निमंत्रण आज तक नहीं सुना, कभी तुम्हारे घर चाय भी पीने नहीं बुलाया गया। तो अगर तुम उदार हो तो आज हम तुम्हारे घर भोजन के लिए चलें? मुल्ला जोश में था। उसने कहा कि सब चलो, निमंत्रण है। लेकिन जैसे-जैसे घर पास आने लगा पत्नी भी पास आने लगी वैसे वैसे भय भी व्याप्त होने लगा।

घर के दरवाजे पर उसके हाथ-पैर कंपने लगे कि यह तो मुसीबत हो गई। पत्नी को क्या कहेगा? उसने कहा, "मित्रो! जरा बाहर रुको। तुम जानते ही हो, जरा मैं पत्नी को पहले राजी कर लूं फिर भीतर तुम्हें बुलाऊं।"

वह भीतर गया पत्नी से उसने कहा कि मैं बड़ी भूल में पड़ गया हूं। बीस-पच्चीस मित्रों को निमंत्रण दे आया हूं। भोजन का इन्तजाम करो। पत्नी तो आग बैठी थी, क्योंकि दिन भर से मुल्ला लौटा नहीं था। उसने कहा कि दिन भर के बाद आये हो और उपद्रव लेकर आये हो। भोजन तो आज बिलकुल बनाया ही नहीं है। तो मुल्ला ने कहा, "फिर एक काम करो। तुम जाकर उनसे कह दो कि मुल्ला नसरुद्दीन घर पर नहीं है।" उसकी पत्नी ने कहा कि तुम पागल तो नहीं हो गये हो। तुम्हीं उनको लेकर आये हो। मुल्ला ने कहा कि तू कोशिश कर। मुल्ला की पत्नी ने बाहर जाकर मित्रों से पूछा, "कैसे आये हैं आप?" उन्होंने कहा, "कैसे आये हैं!! मुल्ला ने हमें निमंत्रण भेजा है, भोजन के लिए हम आये हैं!"

पत्नी ने कहा, "मुल्ला तो घर पर नहीं है।" मित्रों ने कहा, "आश्चर्य! हमने अपने साथ उन्हें अपनी आंखों से घर के भीतर जाते देखा है। हमने अपने कानों से तुम्हारी और उनकी बातचीत सुनी है। हमने उन्हें यह भी कहते सुना है कि तुम जाकर मित्रों से कहो कि मुल्ला घर पर नहीं है।"

मुल्ला को इससे बड़ा क्रोध आ गया। उसे तो सुनायी पड़ रहा था

भीतर। जोश उसका बढ़ गया। उसने खिड़की खोली और जोर से कहा, "यह भी तो हो सकता है कि मुल्ला तुम्हारे साथ आये हों और पीछे से दरवाजे से कहीं चले गये हों।"

जो आदमी इन्कार करता है कि मैं नहीं हूं, उसका इन्कार ऐसा ही होगा। इन्कार करने में भी तो मैं मौजूद हो जाता हूं। लेकिन इस "मैं" का आपको पता कैसे चलता है? कैसे आपने जाना कि आप हैं? क्या उपाय है, क्या विधि है? क्या उपकरण है? कौनसी इन्द्रियां हैं? किस माध्यम से आपको खबर मिली कि आप हैं? तब आप बड़ी मुश्किल में पड़ेंगे। किसी इन्द्रिय से यह खबर नहीं मिलती। निश्चित ही आपका जो अनुभव है वह इन्द्रियों से उपलब्ध नहीं होता है। आप अपने को जानते हैं कि मैं हूं—बिना किसी कारण के, बिना किसी गवाही के।

अगर किसी अदालत में आप पर मुकदमा चले और आपको गवाही उपस्थित करनी पड़े कि आप गवाही दें, कौन है गवाह कि आप हैं। हां, ऐसे गवाह मिल सकते हैं आपको कि आपका नाम क्या है, आपके पिता का नाम क्या है?

लेकिन अगर कोई अदालत यह जिद करे कि आप यह गवाही दें पहले—यह पक्का हो कि आप हैं, तो आप कोई भी गवाही उपस्थित न कर सकेंगे, क्योंकि इसकी कोई गवाही नहीं है। यह आपका अन्तर्बोध है, अतीन्द्रिय बोध है— इन्द्रियों से इसका कोई लेना-देना नहीं है। इसलिए कोई इन्द्रिय उसकी गवाही नहीं दे सकती।

इसलिए दूसरी बात आप खयाल में ले लें। **अगर मेरी सारी इन्द्रियाँ भी मुझसे अलग कर ली जायें तो भी मेरे होने का बोध नहीं खोता।** अगर मेरा हाथ काट दिया जाये तो मेरे होने के बोध में कोई कमी नहीं पड़ती। मेरी आंखें निकाल ली जायें तो मेरे होने के बोध में कोई कमी नहीं पड़ती। मेरी जबान काट दी जाये तो मेरे होने के बोध में कोई कमी नहीं पड़ती। **मेरा जगत छोटा हो जाए, मैं छोटा नहीं होऊंगा।** मेरी आंख अगर फूट गई तो प्रकाश का जगत मेरा समाप्त हो गया। इस जगत में मेरे लिए प्रकाश का आयाम न रहा। मेरा जगत दरिद्र हो जाएगा—उसमें सब प्रकाश और रंग खो जायेंगे। मेरे कान अगर किसी ने फोड़ दिये तो मेरे लिए फिर जगत में संगीत न रहा, ध्वनि न रही, शब्द न रहे, भाषा न रही। मेरा जगत छोटा हो गया। और मेरे पैर और हाथ किसी ने काट दिये तो मति से इस जगत से जो मेरा संबंध

होता था वह सब छूट गया।

लेकिन एक मजे की बात है कि मेरे होने के बोध में इंच भर भी कमी नहीं होती। क्योंकि अगर मेरे होने का बोध अगर आंख से मिला ही नहीं था तो आंख हटने से खोयेगा भी क्यों ? और अगर मेरे होने के बोध में कान ने दान ही नहीं दिया था तो कान के हट जाने से मेरे होने के बोध में कमी क्यों पड़ेंगी ?

अंधे का जगत छोटा होता है लेकिन आत्मा छोटी नहीं होती। और कभी-कभी तो बड़ी भी होती है। बड़ी का मतलब यह कि जगत छोटा होता है। इसलिए ध्यान बंटाने के लिए बाहर कम उपाय हैं तो ध्यान भीतर की तरफ प्रवेश करता है।

इन्द्रियों से उसका बोध नहीं होता। उसके बोध का कोई संबंध इन्द्रियों से नहीं है। इसलिए मेरी सारी इन्द्रियां भी हट जाएं तो भी मैं उतना ही होता हूं जितना था। जिसका बोध इन्द्रियों से नहीं होता फिर भी जिसका बोध होता है, इस बोध को हमें कोई नया नाम देना पड़े, इसलिए इसे आत्मबोध कहा है।

अगर आप मुझे दिखायी पड़ रहे हैं तो प्रकाश चाहिए। अभी प्रकाश बुझ गया था आप मुझे दिखायी नहीं पड़ रहे थे। लेकिन सारा प्रकाश जगत से बुझ जाए, तो भी क्या ऐसा हो सकता है कि मैं स्वयं को दिखायी न पड़ूं। सारे जगत का प्रकाश बुझ जाए, गहन अन्धकार हो जाए, कुछ भी मुझे दिखायी न पड़े फिर भी एक तो मुझे दिखायी पड़ेगा—वह मैं हूं।

यह जो मेरे भीतर का अस्तित्व है, अतीन्द्रिय है। आपके भीतर भी जो है वह भी अतीन्द्रिय है। और जिसका बोध इन्द्रियों पर निर्भर नहीं है उसके लिए ही ऋषि ने कहा है—जिसके न हाथ हैं न पैर, जो हाथों और पैरों में है, लेकिन जिसके न हाथ हैं न पैर, जिसके न कान हैं न आंख। जो कान में से सुनता है और आंख में से झांकता है, लेकिन जिसके न कान है न आंख। कान और नाक और हाथ और पैर का जो उपयोग करता है, लेकिन जिसका कोई भी हाथ-पैर-नाक-कान नहीं है, इन्द्रियां जिसके उपकरण हैं, लेकिन इन्द्रियां जिसकी अनिवार्यता नहीं। जो बिना इन्द्रियों के हैं। और यह भी समझ लें कि चूंकि भीतर की चेतना बिना इन्द्रियों के है इसीलिए इन्द्रियों का उपयोग कर पाती है; नहीं तो उपयोग नहीं कर पायेगी।

आंख खुद नहीं देखती। आंख से वह देखता है जिसके पास कोई आंख नहीं है। इस आंख से भी वही देखता है जिसके पास कोई आंख

नहीं है। इस आंख से भी वही देखता है जिसके पास कोई आंख नहीं, यह आंख भी एक खिड़की से ज्यादा नहीं। इस कान से भी वही सुनता है जिसके पास कोई कान नहीं। ये कान भी खिड़की से ज्यादा नहीं। और इसलिए यह एक और मजे की बात है वह यह कि अगर प्रयास किया जाये तो बिना कान के भी सुना जा सकता है। और अगर प्रयास किया जाये तो बिना शब्द के भी बोला जा सकता है।

अब तो इस सम्बन्ध में काफी खोज-बीन चल पड़ी है। और न मालूम कितने विश्वविद्यालय इस परा-मनोविज्ञान (साइकिक रिसर्च) पर अध्ययन, विश्लेषण, शोध कर रहे हैं। और बहुत से तथ्य वैज्ञानिक बन गये हैं। इसलिए पहले उन तथ्यों की आपसे बात कहूं जो वैज्ञानिक बन गये हैं क्योंकि उनमें फिर कोई विवाद नहीं है। धर्म उन तथ्यों की निरंतर घोषणा करता रहा है, लेकिन धर्म की बात लोगों को तब तक माननी मुश्किल पड़ती है जब तक कि कोई अनुभूत प्रयोग स्पष्ट न हो जाये।

अंतरसंबंधों का जगत

बुद्ध के सम्बन्ध में कथा है कि बुद्ध का शिष्य जहां भी हो, कितने ही दूर हो जब भी बुद्ध का स्मरण करे तो बुद्ध से उसके अंतर-सम्बन्ध स्थापित हो सकते थे। कितने ही दूर हो और अगर बुद्ध से पूछना चाहे तो उत्तर पा सकता था। लेकिन यह बात कपोल-कल्पना या कथा मालूम पड़ती है। लेकिन अब वैज्ञानिक आधारों पर पश्चिम में सब सुनिश्चित हो गया है कि समय और स्थान का फासला विचार के संक्रमण में बाधा नहीं है। कितनी भी दूर विचार संक्रमित हो सकता है।

रूस के फयादेव ने एक हजार मील दूर तक विचार के संक्रमण के स्पष्ट प्रयोग समस्त वैज्ञानिक व्यवस्थाओं में सफल किये हैं। एक हजार मील दूर पर कैसे भी व्यक्ति को फयादेव संदेश प्रसारित कर सकता है, बोलता नहीं। आंख बन्द कर लेता है, बन्द ही नहीं कर लेता करीब-करीब 'कोमा' की हालत में पड़ जाता है, बेहोश हो जाता है। ध्यान करता है, पन्द्रह-बीस मिनिट बाद बिलकुल मुर्दे की तरह हो जाता है। और जब मुर्दे की तरह हो जाता है तब वह विचार संक्रमित कर पाता है। तब बिना बोले, बिना शब्द का, कंठ का उपयोग किये उसके विचार संक्रमित हो जाते हैं—दूर, कितने ही दूर। रूसी उत्सुक रहे हैं। पिछले बीस वर्षों से, विशेषकर अंतरिक्ष की यात्रा के लिए, क्योंकि अंतरिक्ष की यात्रा

में यन्त्रों पर ही निर्भर रहना कभी भी खतरनाक हो सकता है।

जैसे अभी एक दुर्घटना हो गई। अगर रेडियो यन्त्र जरा भी बिगड़ जाये और यन्त्र का भरोसा नहीं है—कितना ही सुनिश्चित हो तो भी भरोसा नहीं है। कभी भी बिगड़ तो सकता ही है। अगर अंतरिक्ष की यात्रा में किसी यात्री-विमान का रेडियो यन्त्र बिगड़ जाये तो हमारे सम्बन्ध उससे सदा के लिए खो जायेंगे। फिर वह जीवित है, यान के यात्री बचे या मर गये, कहां गये? क्या हुआ? फिर कभी हमें उनका कोई भी पता नहीं चलता। यह स्थिति भयानक है इसलिए रूस में बीस साल में चिन्ता पैदा हुई और इसकी फिकर की गई कि यन्त्रों के साथ-साथ परिपूरक व्यवस्था भी कोई होनी चाहिए।

जब यंत्र असफल हो जायें तो क्या विचार संक्रमण तब भी हो सकता है? यन्त्र बन्द पड़ गये हों तो यात्रियों में कोई कम से कम पृथ्वी को इतनी तो खबर दे सके कि हम कहां हैं, हमसे सम्बन्ध कैसे निर्मित किया जाये, दो-चार शब्द भी संक्रमित हो सकें ऐसा कोई उपाय हो सके तो पहली दफे उनको टेलीपैथी का ख्याल आया। पहली दफे उनको पता चला कि सारी दुनिया के धर्म कहते हैं कि विचार संक्रमण बिना इन्द्रियों के हो सकता है। तो इसकी कोशिश की जाये। बीस वर्ष में रूस ने बहुत प्रयोग किये हैं और उसकी सफलता अनूठी है। विचार संक्रमण सफल हो गया है। कितनी ही दूरी पर—सिर्फ मैं अपने भीतर ध्यान करूं—विचार को प्रक्षेपित किया जा सकता है।

अब बड़ी कठिनाई है कि वह विचार जाता कैसे है? कोई इन्द्रिय उपयोग में नहीं आती। देने वाले की तरफ से भी और लेने वाले की तरफ से भी कोई इन्द्रिय काम में नहीं आती। क्योंकि रिसीवर के लिए शांत हो जाना पड़ता है, बस। जिसको विचार सुनायी पड़ता है वह भी यह नहीं कह सकता कि कान से सुनायी पड़ता है। वह भी कहता है, भीतर सुनायी पड़ता है। कान से कुछ लेना-देना नहीं है। कानों को बिलकुल बंद कर दिया जाये तो भी सुनायी पड़ता है। कानों को सब तरफ से बन्द कर दिया कि जरा-सी भी आवाज अंदर प्रवेश न कर सके। बाहर ढोल बज रहे हैं वे सुनायी नहीं पड़ते, लेकिन फयादेव हजार मील दूर से जो बोल रहा है वह सुनायी पड़ता है।

एक बात साफ है कि कान से वह भीतर नहीं जाता, फिर कहां से जाता है?

अमेरिका में एक व्यक्ति टेड-सीरियो है। वह कितनी ही दूर के स्थानों में चीजों को देख पाता है, कितनी ही दूर से। न्यूयार्क में बैठकर उसने ताजमहल को देखा। और फिर देखते ही उसकी आंख से चित्र लिया जा सकता है ताजमहल का। और सिर्फ आंख में चित्र ही नहीं आता, उसका फोटोग्राफ भी उतारा जा सकता है। हजारों फोटोग्राफ्स उतारे गये हैं, जो उसकी आंख में से लिए गए चित्र हैं। और वे ठीक ताजमहल की खबर देते हैं।

इस आदमी को क्या हो रहा है? और जब इसकी आंख में चित्र आता है तब इसकी आंख बन्द होती है। आंख बन्द करके वह ध्यान करता है—ताजमहल पर, तो जब वह चित्र भीतर आता है तब वह कहता है कि मैं आंख खोलता हूं, कैमरा तैयार रखना। क्योंकि क्षण भर में खो जाता है वह चित्र। और कई दफे तो मजेदार घटनाएं घटती हैं। जैसे पिछली दफे जब वह ताजमहल पर प्रयोग कर रहा था तब उसने कैमरा-मेन को कहा कि ठीक, चित्र पकड़ गया है मेरे भीतर। आंख बन्द है इसलिए बन्द आंख में ताजमहल का चित्र आने का कोई उपाय नहीं है। हम सामने भी ताजमहल के खड़े हों तब भी नहीं आ सकता, फिर न्यूयार्क और आगरा में तो बहुत फासला है—आंख देख पाये उसका कोई उपाय नहीं है। आंख बन्द है और टेडसीरियो ने कहा कि कैमरा तैयार कर लें, क्लिक करने के लिए हाथ रख लें, मैं आंख खोलता हूं। आंख उसने खोली और उसने कहा कि चूक गया, यह तो 'हिल्टन होटल' आ गया। और जो फोटो में चित्र आया वह हिल्टन होटल का था।

आंख के बिना भी देखा जा सकता है—दूरी पर, फासले पर। तो भीतर जो छिपा है, इस छिपे हुए का अब तक हमने इन्द्रियों से ही उपयोग किया है। हमने इन्द्रियों के बिना उसका उपयोग नहीं किया है। इसलिए हमें कुछ पता नहीं कि उसकी अतीन्द्रिय क्षमता क्या है?

इस सूत्र में उस क्षमता की खबर है। वह खबर यह है कि वह परम शक्ति, वह परम ब्रम्ह मैं ही हूं। मैं बुद्धि के बिना भी सब कुछ जानने और कानों के बिना ही सब कुछ सुनने और आंखों के बिना ही सब कुछ देखने की सामर्थ्य रखता हूं। यह सामर्थ्य प्रत्येक के भीतर छिपी है।

इस सामर्थ्य का उपयोग हम करें या न करें, यह बिलकुल दूसरी बात

है। हमारे जीवन में जो बड़े से बड़े चमत्कार दिखायी पड़ते हैं, वैसी सामर्थ्य सबके भीतर छिपी है। प्रयोग की यह ही बात है।

एक पहलवान राममूर्ति थे। वे अपनी छाती पर हाथी को खड़ा करते थे या मोटर को निकाल सकते थे। लेकिन उनकी छाती में कोई भी विशेषता न थी। जैसी सबकी छाती है वैसी ही छाती थी। लम्बे अभ्यास का फर्क था। फिर भी कितना ही अभ्यास हो छाती पर हाथी को खड़ा करना तो प्राणघातक है।

प्राणायाम का एक प्रयोग है। हम सब रोज देखते हैं, लेकिन हमारे ख्याल में नहीं आता। रबर का एक पहिया कितने ही वजन के ट्रक को खींचे चला जाता है। वह रबर की ताकत नहीं है, रबर के भीतर हवा की ताकत है। तो राममूर्ति ने एक अभ्यास किया था कि छाती में हवा का इतना आयाम भर लिया जाये कि छाती टायर की तरह उपयोग में आ जाये, तो फिर हाथी खड़ा हो सकता है। उस हाथी का वजन छाती पर नहीं पड़ता, छाती के भीतर भरे हुए हवा के आयाम पर पड़ता है। इसलिए छाती को कोई नुकसान नहीं पहुंचता। वह हवा का आयाम ही उसे झेल लेता है। उतना आयाम सबकी छाती में भर सकता है।

हम सबकी छाती में छः हजार छिद्र हैं जिनमें हवा भर सकती है। लेकिन सामान्यतः डेढ़ हजार छिद्रों से ज्यादा हम सांस ही नहीं लेते कभी। हमारी सांस ऊपर ही जाती है और निकल जाती है। साढ़े चार हजार छिद्र तो जीवन भर कार्बन से ही भरे रहते हैं अंदर हवा पहुंचाते ही नहीं।

> योग कहता है कि अगर यह साढ़े चार हजार छिद्र भी प्राणवायु से भर जायें तो आदमी की उम्र तीन गुनी हो जायेगी। क्योंकि उम्र और जीवन आक्सीजन का ही खेल है। यह क्षमता सबके भीतर है, लेकिन प्रकट नहीं हो सकती, क्योंकि प्रकट होने के लिए तो अभ्यास चाहिए। मन की भी ऐसी ही क्षमताएं सबके भीतर हैं, जो प्रकट नहीं हो पातीं, उनके लिए भी अभ्यास चाहिए। और इस अतीन्द्रिय आत्मा की अनंत क्षमताएं मनुष्य के भीतर हैं, उनका तो हमें पता ही नहीं। अभ्यास तो बहुत दूर, उनका हमें पता ही नहीं। उनका पता न होने से सब चमत्कार मालूम पड़ता है।

अब अगर कोई कहे कि बिना बुद्धि के सोच पाता हूं तो हम कैसे मानेंगे ! कोई कहे कि मैं बिना आंख के देख पाता हूं तो हम कैसे मानेंगे ! कोई कहे कि मैं बिना आंख के देख पाता हूं तो हम कैसे मानें !! और कोई कहे कि मैं बिना कान के सुन पाता हूं तो हम कैसे मानें ! नहीं मानेंगे। उसका कारण यह नहीं है कि ये बातें मानने योग्य नहीं हैं। उसका कुल कारण इतना है कि हमारे अनुभव से इसका कहीं कोई सम्बन्ध नहीं है। थोड़े प्रयोग करें तो आप चकित हो जायेंगे। अगर यहां चार सौ लोग हैं और ये चार सौ लोग प्रयोग करें तो चार सौ में से कम से कम चार तो ऐसे व्यक्ति इसी वक्त निकल आयेंगे। उन्हें भी पता नहीं होगा अपनी क्षमता का।

रूस में ऐसा हुआ। पिछले दस वर्ष पहले एक महिला ने अचानक उंगलियों से देखना शुरू कर दिया। उसकी आंख खराब हो गई थी और उसे पढ़ने का शौक था। पढ़ना ही उसका एकमात्र शौक था। और आंख अचानक खराब हो गई। वह इतनी व्याकुल हो गई, इतनी व्याकुल हो गई कि उसकी व्याकुलता हम इसीसे समझ सकते हैं कि उसने आत्महत्या करने की दो बार कोशिश की किन्तु बचा ली गई। उसके पास एक ही रुचि थी जीवन में—किताब; और आंख खो गई तो उसका सारा जीवन खो गया। उसका जिन किताबों से प्रेम था, वह प्रेम इतना ज्यादा था कि जब वह अंधी हो गई तो किताबों को हाथ में रखकर उन पर हाथ ही फेरती रहती थी।

अचानक एक दिन उसने पाया कि किताब का शीर्षक उसको दिखायी पड़ रहा है। वह घबड़ा गई। हाथ फेरती थी किताब पर उसे शीर्षक दिखायी पड़ रहा है। वह घबड़ा गई। पन्ने उलटे, किताब उसके सामने धीरे धीरे साफ होने लगी। उसने किताब पड़ना शुरू कर दिया।

रूस तो वैज्ञानिक बुद्धि का मुल्क है। वह ऐसा नहीं मानता कि जो एक में घटता है वह चमत्कार है। वह ऐसा मानता है कि जो एक में घटता है वह सब में घट सकता है। तो फिर उन्होंने सैकड़ों बच्चों पर प्रयोग किया है और पाया कि सैकड़ों बच्चे रूस में उंगली से पढ़ सकते हैं। सिर्फ हमने कभी उपयोग नहीं किया।

लेकिन उंगली तो देख नहीं सकती। उंगली पर आंख नहीं है। तो उंगली तो सिर्फ बहाना है। सच बात यह है कि आदमी के भीतर जो है, वह बिना आंख के देख सकती है। हम उसका प्रयोग भर नहीं

करते। कभी थोड़ा प्रयोग करना शुरू करें और आप चकित हो जायेंगे।

कभी आंख बंद करके बैठ जायें, किताब को खोल लें और सिर्फ इतना ही ध्यान करें कि कितने नम्बर का पृष्ठ है। कोई फिकर नहीं दस-बीस बार भूल-चूक होगी। प्रयोग किये चले जायें।

कुछ न कुछ लोग आप में से निकल आयेंगे जिनको पृष्ठ का अंक दिखाई पड़ेगा। और अगर एक अंक दिखाई पड़ सकता है तो फिर कुछ भी दिखाई पड़ सकता है। फिर बात तो अभ्यास की है। फिर कोई अड़चन नहीं है बहुत। और जो मैं कह रहा हूं अब उस पर इतने प्रयोग हो गये हैं कि अब उस पर वैज्ञानिक बुद्धि का आदमी भी संदेह नहीं कर पाता है।

इन्द्रियां हमारे सामान्य द्वार हैं जानने के, लेकिन अनिवार्य द्वार नहीं हैं। **इन्द्रियों के पार भी जाना और देखा जा सकता है।** वह हमारी अनिवार्य क्षमता है। जैन बड़ी मुश्किल में रहे, समझाना बहुत कठिन है क्योंकि महावीर के सम्बंध में कहा जाता है कि महावीर बोलते नहीं थे अपने शिष्यों से। वे चुप ही बैठे रहते थे। और इस चुप्पी में ही बोलते रहते थे। जैनों को बड़ी कठिनाई रही है। फिर वह यह कह सकते थे कि तीर्थंकर का चमत्कार है। यह सब के बस की बात नहीं। लेकिन इसका तीर्थंकर से कोई लेना-देना नहीं, यह सबके बस की बात भी हो सकती है।

जार्ज गुर्जयेफ ने आज से तीस साल पहले अपने शिष्यों के साथ एक प्रयोग शुरू किया था। जिसमें वह तीन महीने तक पूर्ण मौन में रहने का आग्रह करता था। पूर्ण मौन! बहुत कठिन है। लेकिन तीन महीने अगर कोई सतत प्रयास करे, सतत चौबीस घंटे प्रयास करे, तो फलित हो जाता है। भीतर सब शून्य हो जाता है। और गुर्जयेफ कहता था, जिस दिन तुम पूर्ण मौन हो जाते हो उस दिन मैं तुमसे बिना वाणी से बोलने लगूंगा। और वह बोलता था अपने शिष्यों से।

गुर्जयेफ को मरे अभी थोड़े ही दिन हुए। उसके सैकड़ों शिष्य आज भी मौजूद हैं जिनसे वह बिना शब्दों के भी बोल सकता था। लेकिन तीन महीने उनको पूर्ण मौन से गुजरना पड़ता था। जब पूर्ण मौन से तीन महीने आदमी गुजर जाता है तो उसके मन का सारा का सारा जो शोरगुल है, वह बंद हो जाता है। उस बंद शोर-गुल में वह जो धीमी-सी आवाज है—जो कान से नहीं

पहुंचती हृदय से पहुंचती है—वह पकड़ी जा सकती है।

वह पहुंचती आप तक भी है, लेकिन आप इतनी बड़ी भीड़ में भीतर घिरे हैं, ऐसा बाजार भीतर है कि वह आपको सुनायी नहीं पड़ती। वह कोई विशेषता नहीं है, आप बड़े विशेष हैं यही मुश्किल है। आपके भीतर भीड़ है, भारी बाजार है। उस बाजार की वजह से वह आपको सुनायी नहीं पड़ती; अन्यथा वह आवाज प्रतिपल चल रही है। और कभी-कभी हमको भी सुनायी पड़ती है, लेकिन हमको भरोसा नहीं होता, क्योंकि हमको कोई अनुभव नहीं है।

अचानक आप एक दिन देखते हैं कि आपको मित्र का ख्याल आया और उसने द्वार पर दस्तक दी। तब आप सोचते हैं कि संयोग होगा; क्योंकि आपको उसका पता ही नहीं है। एक दिन अचानक आपको लगता है कि आप बिलकुल प्रसन्न थे और एकदम उदास हो गये। आपको कुछ समझ में नहीं आता। पीछे तार आता है कि कोई मित्र चल बसा, कि कोई प्रियजन बीमार है, तब आप सोचते हैं कि कोई संयोग होगा। संयोग जरा भी नहीं है। जब भी आपका प्रियजन मरता है तब आपके भीतर बिना इन्द्रियों के खटका पहुंचता है, पहुंचेगा ही; क्योंकि मरना कोई छोटी घटना नहीं है, बड़ी घटना है। और जिससे आप जुड़े हैं उससे एक भीतर सम्बंध है, एक भीतरी द्वार है जहां से खबरें आ-जा सकती हैं। इसे हम संयोग मानकर छोड़ देते हैं, क्योंकि हमें पता नहीं है। अगर हमें पता हो तो हर आदमी अपनी जिन्दगी में अनेक ऐसी घटनाएं पायेगा, जो कि उसे खबर देंगी कि जो उसके भीतर छिपा है, वह इंद्रियों के बिना भी काम कर सकता है। और अगर आपको ख्याल हो और सचेतन प्रयोग आप करते हों, तो आप वर्ष-दो-वर्ष में दूसरे ही आदमी हो जायेंगे। आपको वे चीजें दिखाई पड़ने लगेंगी, जो आंख से दिखाई नहीं पड़तीं। और वे चीजें सुनाई पड़ेंगी, जो कान से नहीं सुनाई पड़तीं। और वे आपके अनुभव बन जायेंगे, जिनको बाहर से अनुभव करने का कोई उपाय नहीं।

तब एक भीतरी संपदा का जगत शुरू होता है। तब एक भीतरी अनुभव का अलग ही लोक खुलता है। तब फूल खिलते हैं, जो हमें बिलकुल अपरिचित हैं और संगीत बजता है, जिसका कानों से कोई सम्बंध नहीं। और ऐसे नाद और ऐसे प्रकाश और ऐसे रंग और ऐसे अनुभवों में हम उतरते चले जाते हैं, जिनका इन इन्द्रियों ने कभी कोई संस्पर्श भी

नहीं किया।

लेकिन, जीवन में संयोग शब्द को थोड़ा कम करें। और बन सके तो जीवन से संयोग शब्द को बिलकुल काट दें। और जब भी कोई ऐसी घटना घटती हो, जो इन्द्रियों के पार भी खबर देती हो, तो उसको तथ्य मानकर उस दिशा में काम शुरू कर दें। संयोग मानना एक तरह का बचाव है—एक तथ्य को झुठलाने का, एक तथ्य को भुला डालने का, एक तथ्य को किसी तरह समझा लेने का उपाय है। एक तथ्य जो विचित्रता की तरह पैदा होता है उसको हम सामान्य कर देते हैं संयोग कह कर।

इस जगत में संयोग कुछ भी नहीं है। कान्सीडेन्स—संयोग—जैसी कोई बात नहीं है। इस जगत में जो भी है वह गहरे कार्य-कारण से अनुबद्ध है, गहरे कार्य-कारण में जुड़ा है। जो भी यहां घटित होता है, उस घटने के पीछे कारण है। संयोग कह कर उन कारणों की हम खोज नहीं कर पाते।

अगर हम कारणों की खोज करें तो हमारी भीतरी शक्तियों का अनुभव हमें शुरू हो जाये और जिस दिन हमें उस शक्ति का पता चलने लगे—आंख के बिना जहां दर्शन हो जाये और कान के बिना जहां सुनना हो जाये, उस दिन हमने संसार के बाहर कदम रख लिया, उस दिन हम ब्रह्म के मंदिर में प्रविष्ट हुए।

सूत्र—सब रूपों से परे मैं सबको जाननेवाला हूं, लेकिन मुझ स्वरूप को जाननेवाला कोई भी नहीं।

यह थोड़ा कठिन सूत्र है। कठिन इस कारण कि इसमें एक बहुत गहरी दार्शनिक निष्पत्ति छिपी है। और वह यह है कि परमात्मा के लिए सारा जगत उसके सामने है।

जैसे, उस विराट परमात्मा को हम छोड़ भी दें, पर हमारे भीतर जो परमात्मा की एक लौ, एक दिया जलता है उसको ही समझें तो आसानी होगी। मैं देखता हूं आपको, मैं देखता हूं वृक्षों को, मैं देखता हूं आकाश को, चांद-तारों को, मैं सबको देखता हूं; लेकिन मैं स्वयं को नहीं देख पाता हूं। स्वयं को देखने का मेरे पास कोई उपाय नहीं है। स्वयं का मुझे अनुभव होता है, प्रतीति होती है, दर्शन नहीं होता, हो भी नहीं सकता; क्योंकि दर्शन उसी का हो सकता है जो दूर हो, पराया हो, अलग हो।

मैं खुद को ही कैसे देखूं? देखने के लिए भी तो दूर होना पड़ता है। देखने के लिए भी तो अलग होना

पड़ता है। देखने के लिए भिन्नता चाहिए, बीच में जगह चाहिए। अगर मैं अपना ही दृष्टा बनूं तो मुझे अपने को ही दो हिस्सों में तोड़ना पड़ेगा—एक देखे और एक देखा जाये। यह सम्भव नहीं है। मैं दो हिस्सों में टूट नहीं सकता। और अगर मैं टूट भी जाऊं तो जो देखा जायेगा वह मैं नहीं रहा। मैं तो वही रहा जो देख रहा है।

इसे ऐसा समझें कि मेरी अनिवार्य नियति दृष्टा होने की है और दृष्य मैं नहीं हो सकता हूं। मैं चाहे कुछ भी करूं, मैं दृष्टा ही रहूंगा। दृष्य नहीं बन सकता हूं। क्योंकि मैं दृश्य कैसे बनूंगा? 'मैं जानने वाला' हर स्थिति में जानने वाला रहूंगा।

व्यक्ति के भीतर यह जो चेतना छिपी है वह अनिवार्यरूपेण दृष्टा है, दृश्य कभी भी नहीं हो सकती। ऐसे ही पूरे जगत के भीतर जो चेतना छिपी है वह भी अनिवार्यरूपेण दृष्टा है, दृष्य नहीं हो सकती।

इसलिए सूत्र में कहा है—सबको मैं जानता हूं, सबको मैं जाननेवाला हूं, लेकिन मुझ चित् स्वरूप को जानने वाला कोई भी नहीं। परमात्मा आत्यंतिक दृष्टा है—आखिरी; सिर्फ उसे देखने का कोई उपाय नहीं।

इसलिए जब हम कहते हैं, परमात्मा का दर्शन तब हम बड़ी भूल भरी भाषा का उपयोग करते हैं। लेकिन मजबूरी है, क्योंकि कुछ भी उपयोग करें वह भूल भरा होगा। भाषा ही भूल भरी है। उस दिशा में, उस आयाम में भाषा ही भूल भरी है। तो हम कहें परमात्मा का दर्शन तो भी भूल हो जाती है। क्योंकि परमात्मा का दर्शन—उसका मतलब हुआ कि हम परमात्मा के भी दृष्टा हो सकते हैं।

इस तरह कभी सोचा न होगा। हम सोचते हैं परमात्मा का दर्शन, लेकिन उसका मतलब क्या होता है? उसका मतलब मैं परमात्मा का भी दृष्टा हो सकता हूं। उसका मतलब होता है कि मैं परमात्मा को भी एक वस्तु बना सकता हूं, जिसको मैं देख लूं।

परमात्मा का कोई दर्शन नहीं हो सकता। जो होता है उसे हम दर्शन शब्द से कहने की कोशिश करते हैं; क्योंकि हमारे पास कोई और शब्द नहीं है। और दूसरे शब्द भी ऐसे हैं—अगर हम कहें अनुभव तो

उसमें भी वही बात हो जाती है कि वह वस्तु बन गई। कुछ भी हम कहें– जो भी शब्द का हम उपयोग करेंगे, उसमें परमात्मा वस्तु बन जायेगा।

> इसलिए बुद्ध जैसे मनीषी ने परमात्मा के सम्बन्ध में कुछ कहने से इन्कार कर दिया। इसलिए नहीं कि वह नहीं है, बल्कि इसलिए कि जो भी कहा जायेगा वह गलत होगा। लेकिन लोग नहीं समझे, लोग समझें कि बुद्ध ईश्वर को मानते नहीं।

बुद्ध से ज्यादा परम आस्तिक व्यक्ति जगत में दूसरा नहीं हुआ है। लेकिन उनकी परम आस्तिकता इतनी आत्यंतिक और आखिरी है कि वे ईश्वर के सम्बन्ध में एक गलत शब्द का उपयोग करने को भी तैयार नहीं। तो वे ईश्वर शब्द का भी उपयोग करने को तैयार नहीं। वे कहते हैं उसमें भी गलती हो ही जायेगी। क्योंकि हम जब भी किसी शब्द का उपयोग करेंगे हम उस शब्द के जानने वाले हो गये, ज्ञाता हो गये। और शब्द से तो जानने वाला बड़ा हो जाता है।

जब कोई कहता है कि मैंने ईश्वर को जान लिया, तो उपनिषद कहते हैं समझना कि उसने बिलकुल नहीं जाना। क्योंकि जो कहता है ईश्वर को जान लिया उसे समझ में नहीं पड़ रही है यह बात बिलकुल कि उसे जाना नहीं जा सकता। जाना जिन चीजों को जा सकता है, वह ईश्वर नहीं—संसार है।

इसे हम ऐसा कहें—जो भी जाना जा सकता है, वह संसार है। और जो जानने के पार छूट जाता है, वही ब्रह्म है। लेकिन फिर ब्रह्म-ज्ञानी किसको कहें? तब तो ब्रह्म-ज्ञानी हो नहीं सकता। तो ब्रह्मवेत्ता किसको कहें? तो किसे कहें ऋषि?

तब दूसरी तरफ से बात को ख्याल में लें तो आसानी होगी। **वह जाना तो नहीं जा सकता, लेकिन हम उसमें मिट तो सकते हैं—उसमें हम खो सकते हैं।** उसे जानना तो मुश्किल है, लेकिन हम वही हो सकते हैं। क्योंकि जानने के लिए तो दूरी चाहिए, वही होने के लिए सब दूरी मिटानी है। जानने में फासला है, वही होने में सब फासले का गिर जाना है।

> बूंद सागर को जानेगी तो क्या! लेकिन बूंद सागर में गिर तो सकती है। गिर कर एक तो हो सकती है। और एक हो कर फिर

जानना वैसा ही हो जायेगा
जैसे अभी हम अपने को
जानते हैं बिना कारण
बिना इन्द्रियों के।

जिस दिन व्यक्ति परमात्मा से एक हो जाता है उस दिन भी वह जानता है, लेकिन अब वह पदार्थ की तरह नहीं जानता, अपने होने की तरह जानता है। आप अपने को किस तरह जानते हैं? उसी तरह वह व्यक्ति परमात्मा को जानता है। कोई कारण नहीं, कोई प्रकाश नहीं, कोई इन्द्रिय नहीं, फिर भी जानता है।

वह जानना इसी जानने का विस्तार है। वह जानना जगत को जानने वाला जानना नहीं है। इसलिए सूत्र में कहा है—सब रूपों से परे, सबको जाननेवाला मैं ही हूं। लेकिन मुझ चित्स्वरूप को जाननेवाला कोई भी नहीं।

यह सूत्र बड़ा कीमती है। इसे उस परम ब्रह्म की खोज में निकले व्यक्ति को बहुत हृदय की गहराई में रख लेना चाहिए कि—

उसे जाना नहीं जा सकता,
उसे जिया जा सकता है।
उसमें एक हुआ जा सकता
है। उसमें खोया जा सकता
है। उसमें मिटा जा सकता
है। वही हुआ जा सकता
है, लेकिन जाना नहीं जा
सकता।

जानने में दूरी है इसलिए, फासला है इसलिए। और परमात्मा के साथ जब तक इंच भर का भी फासला है तब तक कोई उपाय नहीं। उस फासले को भी कम करना हो तो क्या करें? परमात्मा को पास लायें, बुलायें, चिल्लायें, पुकारें? कितना ही चिल्लाओ, कितना ही बुलाओ, उसे पास लाने का उपाय नहीं है; क्योंकि वह पास है ही। फिर भी हम चिल्लाते हैं, पुकारते हैं। तो एक बात साफ है कि वह जो पास है वह हमें पता नहीं चल रहा है, और कोई कारण नहीं है।

इसलिए अगर हम परमात्मा को पास लाना चाहते हैं तो उसे बुलाने और पुकारने से काम नहीं होगा, अपने को मिटाने से काम होगा। जैसे-जैसे हम पिघलेंगे, मिटेंगे, बिखरेंगे वैसे-वैसे वह पास होने लगेगा। जिस दिन हम बिलकुल बिखर जायेंगे, खो जायेंगे उस दिन वह यहीं हो जायेगा जहां हम हैं।

ऐसा समझें कि एक बर्फ की
चट्टान पानी में बही जा
रही है। सागर से मिलना
है उसे। चिल्लाती है,

चीखती है, लेकिन पिघलती नहीं। और सागर में ही है, इसलिए चीखने-चिल्लाने से कुछ भी न होगा। सागर को बुलाने से कुछ न होगा, सागर यहीं है, वह उसी में तैर रही है। वह सागर से मिलना चाहती है। कहां खोजे सागर को ? जितना खोजती है कहीं उसका पता नहीं मिलता। ठीक वैसी हमारी दशा है, जो बर्फ की चट्टान की है।

बर्फ की चट्टान के लिए एक ही काम है कि पिघल जाये—खो जाये, तो यहीं पैरों के तले, इसी जमीन में उसे परमात्मा, उसे सागर उपलब्ध हो जाये। हमें भी पिघलना होगा। इसलिए हमने जो शब्द चुना है इस पिघलने के लिए, वह है तप और कीमती शब्द है। तप का मतलब होता है—ताप। अगर चट्टान को पिघलना है तो तपना पड़े। तपना पड़े तो पिघल जायें। हमें भी अपने को तपाना पड़े। उस तपन में ही हम पिघलेंगे। और हमारा अहंकार और हमारा बर्फ, हमारी चट्टान पिघले तो सागर से एक हो जाये। तब हम सागर ही हो जायेंगे। तब हम ऐसा न कहेंगे कि हम सागर को जानते हैं। तब हम ऐसा ही कहेंगे—अब हम न रहे, सागर ही है।

● संकलन : *स्वामी कृष्ण कबीर*
बम्बई

मिलें

मुल्ला नसरुद्दीन

से—

अंतिम दिन को जो याद रखता है, वही बुद्धिमान है।
लेकिन, दूसरे के नहीं, स्वयं के।
एक आदमी जबर्दस्ती मुल्ला नसरुद्दीन की पगड़ी छीन कर भाग गया। मुल्ला ने उसका पीछा करने के बजाय सीधे कब्रिस्तान की राह पकड़ी और वहीं डेरा डाल दिया। जो लोग यह सब खेल देख रहे थे उन्होंने चकित हो मुल्ला से पूछा : नसरुद्दीन, चोर तो दूसरी तरफ भाग गया, तुम यहां क्या कर रहे हो ?
मुल्ला ने कहा : आखिर एक दिन वह भी तो यहीं आवेगा, बस समझ लूंगा।

★

दिग्दर्शक अभिनेता विजय आनन्द का नव-संन्यास में प्रवेश

फिल्म-जगत के प्रसिद्ध दिग्दर्शक व अभिनेता श्री विजय आनन्द ने दिनांक २६ अगस्त १९७३ को भगवान श्री रजनीश के निवास स्थान पर उनकी उपस्थिति में संन्यास ग्रहण किया। इनका संन्यास का नाम स्वामी विजय आनन्द भारती है।

इसके पूर्व 'त्रिसंध्या' फिल्म में वहीदा रहमान के साथ काम करने वाले नवोदित अभिनेता श्री भास्कर जी ने भी भगवान श्री के समक्ष संन्यास लिया है।

इसके अलावा अन्य कई प्रसिद्ध कलाकार संन्यास लेने को उत्सुक हैं। संक्षेप में इस घटना ने फिल्म-जगत में एक तूफान खड़ा कर दिया है।

[योग-दीप से साभार]

● प्रस्तुतकर्त्ता : *'आकुल' राजेन्द्र*
जबलपुर

★

जीवनोपयोगी
म न न *(आध्यात्मिक हिन्दी मासिक)*

जिसमें प्रतिमास सन्त-महात्मा व विद्वानों के विचारों को संकलित कर ४० पृष्ठों में मन-मोहक चित्रों सहित दो रंगों में पाठकों तक पहुंचाया जाता है।

मूल्य—१ प्रति : ५० पैसे, वार्षिक : ५ रुपये

प्राप्ति स्थान—

गुप्ता मिल्स इस्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

★

तुलसी मानस प्रकाशन

हरिकिशनदास अग्रवाल द्वारा लिखित

संक्षिप्तरूप में आधुनिक ढंग से आध्यात्मिकता की ओर प्रेरित करने वाली जीवनोपयोगी पुस्तकें

१. संसार का सार (हिन्दी में) ३–००
२. ज्ञान साधना : २–००
३. विज्ञान से ज्ञान : १–००
४. वेदान्त-नवनीत : २–००
५. वेदान्त का सरल बोध : २–००
६. आध्यात्मिक पिक्टोरियल (हिन्दी व अंग्रेजी) : ४–००
७. आध्यात्मिक डायरी १९७३ ७–५०
८. आध्यात्मिक चित्रावली (हिंदी-इंगिलश) पाकेट बुक ६–००
९. मुमुक्षु (शिक्षाप्रद उपन्यास) ५–००
१०. मन की शांति (पद्य) : अंग्रेजी 'पीस ऑफ माइंड' का हिन्दी अनुवाद ४–००
११. हमारी परंपरा : २–००
१२. आराम सुख शांति और आनंद : १–००
१३. Ease Peace Happiness and Bliss (English) 0–25
१४. अपनी ओर इशारा : १–००
१५. व्यवहारिक जीवन और परमात्मा : १–००
१६. श्मशान यात्रा : १–००
१७. मेरे १०८ गुरु : ३–००
१८. सजगता : १–००
१९. अविरोध-निरोध और स्वबोध : २–००
२०. वेदान्त का वैज्ञानिक मनन: २–००
२१. चिंता और निश्चितता : २–००
२२. मन के पार : विकट प्रश्नों पर आचार्य श्री रजनीश जी के उत्तर : १–००
२३. घर-घर की समस्या : २–००
२४. पीस आफ माइन्ड : (अंग्रेजी में) ५–००
२५. क्वायटर मोमेन्ट्स : (अंग्रेजी में) : २–००
२६. मनन योग्य बातें : १–००
२७. उनके सान्निध्य में : २–००
२८. जाग रे जाग ४–००
२९. जाग्रत-जाग्रत : ०–५०
३०. आधुनिक वेदान्त : २–००
३१. आंखों देखी २–००
३२. बात-बात में बात (आध्यात्मिक उपन्यास) ३–००
३३. अध्यात्म–नवनीत २–००
३४. साधना शिविर ३–००
३५. 'मनन' आध्यात्मिक मासिक वार्षिक शुल्क : ५–००

ग्राहक एवं एजेन्ट्स एवं पुस्तक विक्रेता पत्र-व्यवहार करें

तुलसी – मानस – प्रकाशन

अन्तर्गत विभाग केबल मार्केटिंग कम्पनी
गुप्ता मिल्स स्टेट, रे रोड, बम्बई–१०

भगवान श्री रजनीश का अमृत आवाहन

–: चलें माउंट आबू :–

ध्यान साधना शिविर

दिनांक : ५ अक्टूबर संध्या से १३ अक्टूबर, ७३ संध्या तक

प्रवचन विषय—कठोपनिषद् (KATH-UPANISHAD)

स्थल : बीकानेर पैलेस हाटल
माउण्ट आबू, (राजस्थान)

प्रवेश शुल्क—प्रति साधक ४०/- रु०

निवास तथा भोजन का व्यय अलग-अलग साधकों की सुविधानुसार

कार्यक्रम : सुबह एवं रात्रि प्रवचन, सक्रिय ध्यान, कीर्तन ध्यान, त्राटक ध्यान एवं प्रभु-कृपा-चिकित्सा ।

अन्य समस्त जानकारियों के लिए संयोजक से संपर्क करें :

- जीवन जागृति केन्द्र
  ए-१, वुडलैण्डस्, पैडर रोड
  बम्बई–२६
  फोन : ३८११५९

- जीवन जागृति केन्द्र
  भवानी चेम्बर्स,
  आश्रम रोड, अहमदाबाद–९
  फोन : ७७५७३